मुद्रक तथा प्रकाशक-
घनश्यामदास
गीताप्रेस, गोरखपुर

मूल्य ।) चार आना

सं० १९८८
प्रथम संस्करण ३२५०

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर।

श्रुतिकी टेर

श्रुतिकी टेर सुने हुए सन्त

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

श्रुतिकी टेर

प्रथमाधिकारी

इन्द्रवज्रा छन्द

(१)

रे जीव ! भोले ! उठ जाग जा रे, सोया घना ही अब सो न प्यारे ।
दे खोल आँखें तज मोह निद्रा, अच्छी नहीं है यह शोक-तन्द्रा ॥

(२)

विज्ञानका दीपक हाथ ले रे, वैराग्यका बख्तर काँख दे रे ।
कैवल्य भूमा पद ढूँढ ले रे, संसारसे तू कर कूँच दे रे ॥

(३)

कैवल्य भूमा सुखसे भरा है, ना शोक ना मोह वहाँ ज़रा है ।
ना अस्त होवे चमके सदा है, सो धाम तेरा घर नित्यका है ॥

(४)

चैतन्य साक्षी सुख सिन्धु राशी, ऊँचा सभीसे सबका प्रकाशी ।
ना पार वाका नहिं वार ही है, है एकसा अक्षय नित्य ही है ॥

(५)

जन्मे नहीं है मरता नहीं है, सूखे नहीं है सड़ता नहीं है ।
आता न जाता हिलता नहीं है, आत्मा सभीका शिव एक ही है ॥

(६)

प्रज्ञान भूमा सबसे अनूठा, सच्चा वही है सब विश्व झूठा।
ना नाम वाका नहिं रूप कोई, है धाम तेरा शुचि शुद्ध सोई॥

(७)

हैं नाम सारे उस एकके ही, हैं रूप वेरूप असंगके ही।
है पूर्ण सोई अरु शून्य सोई, है विष्णु सोई शिव इन्द्र सोई॥

(८)

माया नटी है तुझको भुलाती, निस्संगको बन्धन है दिखाती।
दे दुःख नाना सुख है छुड़ाती, छोटी बड़ी योनिनमें भ्रमाती॥

(९)

दे त्याग माया शुचि शान्त हो जा, स्वच्छन्द निस्संग अनन्त हो जा।
निःशोक निर्मोह अचिन्त्य हो जा, निर्द्वन्द्व आत्मा शुचि सन्त हो जा॥

(१०)

निष्काम है तू अज है असंगी, है देह तेरा मल-मूल-भंगी।
मैं और मेरा भव-मूल दोनों, दे त्याग प्यारे! भय शूल दोनों॥

(११)

संसार आसक्ति सन्ताप है रे, चिन्ता चिता माहिं जलाय है रे।
संसारसे ले मुख मोड़ प्यारे, विश्वेशमाहीं मन जोड़ प्यारे॥

(१२)

ना काम आवें सुत द्रव्य दारा, ले ईशका केवल तू सहारा।
सन्मित्र त्राता सबका वही है, तेरा वही है उसका तुही है॥

(१३)

आशा उसीकी रख एक प्यारे, विश्वास श्रद्धा समता क्षमा रे।
सन्तोष सद्‌बुद्धि सदा बढ़ा रे, ईर्षादिके पास कभी न जा रे॥

(१४)

शीतोष्ण सारे सह द्वन्द्व प्यारे, आपत्तिमें व्याकुल हो न जा रे।
हिंसा किसीकी मत भूल कीजे, दे दुःख ताहू सुख पुत्र! दीजे॥

(१५)

सच्चा अमानी भयमुक्त हो रे, निर्दोष प्रेमी हरिभक्त हो रे।
एकान्तवासी मित अल्प भोगी, निर्लेप त्यागी बन शुद्ध योगी॥

(१६)

योगेश पूरा गुरु खोज ले रे, ज्ञानी अमानी शुचि शान्त प्यारे!
शास्त्रज्ञ तत्त्वज्ञ दयानिधाना, ध्यानी विरागी अति ही सयाना॥

(१७)

आचार्य ऐसा मिल पुत्र! जावे, विश्वास श्रद्धा परिपूर्ण लावे।
पैरों उसीके पड़ जाय जो है, माया नटीसे छुट जाय सो है॥

(१८)

जो देय आज्ञा शिर धारि लेवे, दे सौंप काया मन अर्थ देवे।
जो ब्रह्मसो ॐ नहिं भिन्न जाने, शब्दार्थ ज्यों एक अभिन्न माने॥

(१९)

सीधा लगा आसन बैठ जावे, ॐ ब्रह्म माँही मनको लगावे।
हो प्रेम पूरा निज लक्ष्य माँही, याके सिवा है पथ अन्य नाहीं॥

(२०)

हैं मार्ग लाखों श्रुति सन्त गाये, है मार्ग सो ही गुरु जो बताये।
सन्मार्ग सो ही चल नित्य तो-लों, हो शान्ति पूरी नहिं प्राप्त जो-लों॥

(२१)

निश्चिन्त होके कर योग प्यारे, आगे बढ़े जा, घबड़ा न जा रे।
कल्याण होगा नहिं तू गिरेगा, विश्वेश तेरा कर कार्य देगा॥

(२२)

विश्वेश तेरे शिर पै खड़ा है, क्यों सोचता है डर क्यों रहा है।
है साथ तेरे जगदीश प्यारा, होता कभी है तुझसे न न्यारा॥

(२३)

भज तू उसीको मन कर्म वाचा, साथी वही है तव मित्र साचा।
क्यों विश्वमें तू फिर नाचता है, क्यों स्वार्थियोंसे कुछ याचता है॥

(२४)

हे श्रेयकांक्षी! सब त्याग दे रे, विश्वेशका केवल नाम ले रे।
पूजा उसीकी कर तू सदा रे, झूठे सगोंपे मत फूल जा रे॥

(२५)

गा तू उसीको सुन भी उसे रे, रो तू उसीसे हँस ईशसे रे।
चर्चा उसीकी कर ज्ञान ताका, हो बुद्धि ताकी मन प्राण ताका॥

(२६)

माता उसीको पितु जान प्यारे, भाई उसीको सुत मान प्यारे।
दानी उसीको धन जान प्यारे, सच्चा उसे ही हित मान प्यारे॥

(२७)

देखे उसे ही जहँ दृष्टि जावे, दूजा कहीं भी नहिं दृष्टि आवे।
सर्वत्र आँखें प्रभुको निहारें, शब्दों पदोंमें हरि ही पुकारें॥

(२८)

सर्वत्र सो है सब विश्व सोई, कर्ता वही है नहिं अन्य कोई।
कर्ता नहीं तू तज गर्व दे रे, बोझा वृथा ही शिरपे न ले रे॥

(२९)

हो जा उसीका शुचि शान्त हो जा, दे त्याग चिन्ता बिनु चिन्त हो जा।
विश्वेश स्वामी सब जानता है, कल्याण-कर्ता निज भक्तका है॥

(३०)

जो जो मिला है प्रभुका दिया है, तेरी भलाई करता सदा है।
वाकी कृपासे नर देह पाया, ताकी कृपासे तर जाय माया॥

(३१)

तू जी रहा है हरिकी कृपासे, है ब्रह्मचारी शिवकी दयासे।
सन्तोष देता सुख शान्ति देता, विज्ञान देता, हर मोह लेता॥

(३२)

विश्वेशका नित्य कृतज्ञ हो रे, गा तू उसीके गुण, पाप धो रे।
आशा उसीकी उसका सहारा, है डूबतोंका वह ही किनारा॥

(३३)

एकान्तमें तू शिरको झुकाके, दोनों करोंको अपने मिलाके।
प्रेमाश्रुओंसे भरि नेत्र प्यारे, देवेशसे यों करि प्रार्थना रे॥

(३४)

'सामर्थ्य स्वामी! मुझमें नहीं है, वैराग्य नाहीं न विवेक ही है।
तू ही सहारा जगदीश! मेरा, बेदाम मैं चाकर नाथ! तेरा॥

(३५)

साथी सगा ना, नहिं मित्र ही है, ना देह वाणी मन शुद्ध ही है।
कीजे दया दर्शन नाथ! दीजे, हे देव! मेरी मति शुद्ध कीजे॥

(३६)

हे दीनबन्धो! वरदान दीजे, दे ज्ञान चक्षू हर मोह लीजे।
क्या दूर क्या पास तुम्हें निहारूँ, सोचूँ तुम्हें, नित्य तुम्हें विचारूँ॥

(३७)

चाहूँ तुम्हें ही, नहिं अन्य चाहूँ, गाऊँ तुम्हें ही, नहिं अन्य गाऊँ।
ध्याऊँ तुम्हें ही, नहिं अन्य ध्याऊँ, पूजूँ तुम्हें नित्य तुम्हें मनाऊँ॥

(३८)

ना द्रव्य माँगूँ नहिं स्वर्गवासा, ऐश्वर्य नाहीं नहिं मोक्ष आसा।
हे मोह-हारी! निज भक्ति दीजे, संसार आसक्ति अमूल कीजे॥

(३९)

भूलूँ तुम्हें ना फिर सोच नाहीं, जन्मूँ भले लाखन योनि माहीं।
हे आर्तसाथी! हर पाप लीजे, हों आप प्यारे अस बुद्धि दीजे'॥

(४०)

यों प्रार्थना तू प्रभुसे करेगा, तो दोष तेरे हर ईश लेगा।
कल्याणका मार्ग सुझाय देगा, संसारसे मुक्त तुझे करेगा॥

(४१)

जो लौं नहीं ईश दया करेगा, माया-नदीसे नहिं तू तरेगा।
जो लौं नहीं ईश दया हुई रे, क्या कर्म क्या ज्ञान वृथा सभी रे॥

(४२)

प्यारे! तपस्या कर शुद्ध हो रे, ईर्षादि सारे मल डाल धो रे।
आहार थोड़ा हित अल्प वाचा, आचार साचा व्यवहार साचा॥

(४३)

आसक्ति नाहीं कर देहमें रे, साठों घड़ी ही तप चित्त दे रे।
भोगादि इच्छा सब त्याग दे रे, संसार-ज्वाला तज भाग दे रे॥

(४४)

जो लौं नहीं तू पद विष्णु पावे, ना शान्ति तो लौं तव हाथ आवे।
चिन्ता जलावे भय भी सतावे, ऐसा दुखी जीवन क्यों बितावे॥

(४५)

आता बुढ़ापा भगता हुआ रे, है काल तेरे शिर पै खड़ा रे।
जो कल्ह था आज नहीं रहा है, कैसे तुझे भोग लगे भला है॥

(४६)

जन्मा करेगा मरता रहेगा, होगा जहाँ हीं जरता रहेगा।
ना पायगा तू सुख शान्ति तो लौं, भण्डार माहीं मिलता न जो लौं॥

(४७)

आत्मा न जाने नहिं तत्त्व ही है, पूरा अभी योग हुआ नहीं है।
जो लौं बँधा है नहिं शान्ति होगी, चिल्ला रहे हैं श्रुति सन्त योगी॥

(४८)

अष्टांग पूरा करना पड़ेगा, सीढ़ी हि सीढ़ी चढ़ना पड़ेगा।
हो धैर्यधारी घबरा न जा रे, हो धैर्यसे साधन सिद्ध सारे॥

(४६)

धीरे हि धीरे कर योग पूरा, अच्छा नहीं है रहना अधूरा।
आचार्य आज्ञा मत टाल भाई, जो चाहता तू अपनी भलाई॥

(५०)

विद्याभिमानी नहिं योग पाता, ना भक्ति आती नहिं ज्ञान आता।
मूढ़ाभिमानी गिर जाय है रे, होता दुखी ओ भय पाय है रे॥

(५१)

अन्धा कुवे में गिर जाय है रे, जन्मा करे है मर जाय है रे।
तू मोक्षका मार्ग न जानता रे, आचार्य-आज्ञा शिर धार प्यारे॥

(५२)

आज्ञानुकारी मन कर्म वाचा, हे शिष्य! हो तू गुरु-भक्त साचा।
कर्तव्य तेरा सब जान ले रे, क्या धर्म है सो पहिचान ले रे॥

(५३)

छोटा बड़ा या निज धर्म कोई, उत्साहसे तू कर पूर्ण सोई।
हो प्रेम पूरा मन चाव दूना, आलस्य नाहीं पन मैल हू ना॥

(५४)

दे लात आलस्य भगाय दे रे, आरामकी चाह हटाय दे रे।
बैठ खाली बन उद्यमी रे, ना दीर्घसूत्री नहिं आलसी रे॥

(५५)

जो कल्लका हो, कर आज ले रे, जो आजका हो, कर हाल दे रे ।
जो काल जाता नहिं लौट आता, है तात ! क्यों काल वृथा गँवाता ॥

(५६)

शिष्टानुसारी मन कर्म वाणी, अन्यायसे तू रह दूर प्राणी ।
हो सत्यवक्ता शुभ-कर्म-कर्ता, गम्भीर दानी मन धैर्य-धर्ता ॥

(५७)

कामी न क्रोधी बन रे न लोभी, ईर्षा न कीजे नहिं श्रेय सो भी ।
सर्वेन्द्रियाँ औ मन जीत ले रे, आरोग्यतामें मत चित्त दे रे ॥

(५८)

खा अन्न सादा जल शुद्ध पी रे, ना देह मैली नहिं खिन्न जी रे ।
सच्चा रसीला हित बोल थोड़ा, ना हो बतोरा, मत हो चटोरा ॥

(५९)

ना बोल मिथ्या कटु दुष्ट वाणी, निन्दा कभी ना करना बिरानी ।
जो जो सुने सो धरि पेट ले रे, भाँडा किसीका मत फोड़ दे रे ॥

(६०)

ज्यादा बके सो नर तुच्छ होता, ना युद्ध जीते, नहिं सिद्ध होता ।
जो भौंकता कूकर काटता ना, जो गर्जता बादल वर्षता ना ॥

(६१)

निर्मान गम्भीर उदार हो रे, ना हो छिछोरा न लबार हो रे ।
ना कीजिये तू अपनी बड़ाई, रे जीव नाहीं इसमें भलाई ॥

(६२)

कीजे कभी ना अभिमान ही रे, कृष्णार्थ जी रे, पर-हेतु जी रे ।
सर्वात्म-भावी बन सर्व-सेवी, सन्मित्र कीड़े नर देव देवी ॥

(६३)

हो ईश प्रेमी लखि ईश माया, दी शुद्ध बुद्धी प्रभु स्वच्छ काया ।
है नाम सच्चा सुख-सिन्धुकाही, है सत्य सोई सब तुच्छ भाई ॥

(६४)

सर्वेश सोही सब आप ही है, चिन्मात्र भूमा सबमें वही है ।
वाके बिना है सब विश्व रूखा, ज्यों ठूँठ होवे जलहीन सूखा ॥

(६५)

विश्वेश व्यापी जब विश्व भासे, आनन्द आवे भय शोक नाशे ।
वर्षे सुधा ही सब वस्तुओंमें, श्रीश्याम झाँकी तरु डालियोंमें ॥

(६६)

जो प्रेमके नेत्र लगाय गा रे, तो भेद सारा खुल जायगा रे ।
पक्षी लता ब्रह्म बतायँगे रे, वेदाङ्ग वेदान्त पढ़ायँगे रे ॥

(६७)

श्रीरामको ही भज नित्य प्यारे, बैठा खड़ा या मत भूल जा रे ।
संसारसे तू मुख मोड़ ले रे, श्रीकृष्ण माहीं मन जोड़ दे रे ॥

(६८)

आँखें लखें हैं जिस ईश द्वारा, सोई बना ले निज नेत्र तारा ।
जावें जहाँ नेत्र निहार सोई, दूजा कहीं भी मत देख कोई ॥

(६६)

ले शक्ति जाकी मन दौड़ता है, जाके विना ना कुछ सोचता है।
रे जीव तामें मनको लगा रे, ताके सिवा ना कुछ सोच प्यारे ॥

(७०)

सर्वत्र प्राणेश निहार प्यारे, क्या पास क्या दूर यहाँ वहाँ रे।
सर्वत्र सोई लख तू न दूजा, विश्वेशकी ही कर नित्य पूजा ॥

(७१)

आँखों सभीसे प्रभु देखता है, कानों सभीसे सुनता सदा है।
सारे मनोंसे शिव ध्यान धर्ता, देहों अनेकों धरि कार्य कर्ता ॥

(७२)

हैं देह सारे जगदीश ही के, तू और तेरा सब हैं उसीके।
विश्वेशको ही सब अर्प दे रे, हो जा उसीका, भज ईश ले रे ॥

(७३)

पूजा उसीकी कर प्रेमसे रे, चिन्ता उसीकी कर चित्त दे रे।
ना दूसरेका गहि तू सहारा, विश्वेश पाया जिसने पुकारा ॥

(७४)

हो शुद्ध साचा बन जा अमानी, निष्कामतासे कर कर्म प्राणी।
ना कार्य कोई रख रे अधूरा, जो कार्य हो सो कर तात! पूरा ॥

(७५)

हो नित्य या पाक्षिक कर्म कोई, हो मासका या ऋतु-कर्म कोई।
षण्मास संवत्सर कर्म सारे, उत्साहसे तू कर धर्म सारे ॥

(७६)

अच्छा नहीं ज्यों पशु तात! जीना, हैं धन्य वे जे निज धर्म चीन्हा।
क्या धर्म तेरा पहिचान ले रे, अच्छा बुरा भी सब जान ले रे॥

(७७)

कर्तव्य क्या है गुरु सो सिखावे, क्या है अकर्तव्य वही बतावे।
जो जो बतावे गुरु सो करे जा, जो जो सिखावे मनमें धरे जा॥

(७८)

कर्तव्य पूरा करि पाप धो रे, उत्पन्न वैराग्य विवेक हो रे।
कर्तव्य ज्यों-ज्यों करता रहेगा, अभ्यास त्यों-त्यों बढ़ता रहेगा॥

(७९)

थोड़े दिनोंमें बढ़ि शुद्धि जावे, विश्वास आवे मन धैर्य पावे।
होवे विवेकी अविवेक जावे, विज्ञान पूरा तब हाथ आवे॥

(८०)

विज्ञान है स्वच्छ प्रकाशदाता, विश्वास श्रद्धा बल है बढ़ाता।
होता उजाला मन बुद्धिमें है, विश्वेश दीखे सब दृश्यमें है॥

(८१)

दैवी उजाला हरि मोहि लेता, योगी बनाता सुख शान्ति देता।
हे योगप्रेमी! कर योग प्यारे, चिन्ता मिटा दे सुख शान्ति पा रे॥

(८२)

हो चित्त तेरा सुत! शान्त ज्योंहीं, विश्वेश देवे बल वीर्य त्योंहीं।
यों तो कृपा ईश्वरकी सदा है, ऐसी कृपामें प्रिय! मुख्यता है॥

(८३)

हो मुख्य विश्वेश-कृपा जभी रे, हो सिद्ध योगी प्रिय ! तू तभी रे।
हे जीव ! तू पावन वीर होगा, निश्चिन्त शूरा अरु धीर होगा ॥

(८४)

दैवी कृपापात्र यदा बनेगा, सर्वत्र ही ईश्वर दर्श देगा।
निःशोक निर्मोह प्रशान्त होगा, हो सिद्धिकी वृद्धि महान्त होगा ॥

(८५)

गंगा वहेगी हरि-भक्तिकी रे, आवें हिलोरें सुख-शान्तिकी रे।
धारा सुधाकी वहने लगेगी, तापें मिटें शीतलता बढ़ेगी ॥

(८६)

गंगा सुहानी हरि-भक्ति बच्चा, वैराग्य देगी दृढ स्वच्छ सच्चा।
संसारका रोग बिलाय जावे, आरोग्यता अक्षय हाथ आवे ॥

(८७)

वैराग्य पक्का तब पूर्ण जागे, होवे उजाला तम मोह भागे।
दैवी दया अक्षय रोशनी है, अत्यन्त ही शीतल चाँदनी है ॥

(८८)

विद्या उजाला सुख शान्तिदाता, विज्ञान हे तात ! वही कहाता।
होता उजाला यह योगसे है, वैराग्य अभ्यास किये बढ़े है ॥

(८९)

भासे सदा चिन्मय चाँदनी है, मोहान्ध-हारी सुखदायिनी है।
साक्षी स्वयं सिद्ध विशुद्ध पूर्णम्, आनन्दधारा अघ-वृन्द-चूर्णम् ॥

(६०)

पावे जभी तू यह शुद्ध विद्या, व्यापे कभी ना तुझको अविद्या।
ब्रह्माण्डमें तू भरपूर होवे, स्वाराज्य तेरा सब ठौर होवे॥

(६१)

विज्ञान-आदित्य प्रकाश होवे, वैराग्य पक्का दृढ़ ठोस होवे।
गंगा बहे भक्ति अखंड धारा, हो नष्ट माया-परिवार सारा॥

(६२)

माया विलावे मन भी विलावे, अद्वैत साचा शिव दृष्टि आवे।
जा रंग प्यारे! शिव-रंग माँही, अभ्यास ऐसा कर चूक नाहीं॥

(६३)

अद्वैतता देख अखंडता रे, नानात्वमें भी लख एकता रे।
है एक सारा सब एक ही है, ना भाग ही है न विकार ही है॥

(६४)

सर्वत्र ही तू लख एकता ही, क्या बाह्य क्या भीतर एकसा ही।
सर्वत्र भासे शिव एक बच्चा, चैतन्य राशी अविनाशि सच्चा॥

(६५)

अद्वैत द्रष्टा दृशि मात्र ही है, ना देश ना काल न वस्तु ही है।
ना ध्यान ध्याता नहिं ध्येय ही है, ना ज्ञान ज्ञाता नहिं ज्ञेय ही है॥

(६६)

सो एक ही तू चमके सदा है, निर्लक्ष्य कूटस्थ सदा नया है।
है नित्य आनन्द अनन्त तू है, ब्रह्माविनाशी परिपूर्ण तू है॥

(९७)

हो पूर्ण जा तू कर योग प्यारे, संसारसे तू छुट शीघ्र जा रे।
हो योग-आरूढ़ अभी अभी रे, आलस्य नाहीं कर तू कभी रे॥

(९८)

आत्मा परात्मा मिल एक होई, है योग प्यारे! कहलाय सोई।
जो ब्रह्म आत्मा परसे परे है, हे जीव! सो योग किये मिले है॥

(९९)

आत्मा सदा है शिव एक त्राता, आनन्दका भी सुख-शान्ति दाता।
विज्ञान प्रज्ञान कहाय जोई, सो योगसे तात! समक्ष होई॥

(१००)

है एकता योग समानता है, सो योग रस्ता प्रभु प्राप्तिका है।
हैं मार्ग नाना पथ एक तेरा, जा एक रस्ते सुन वाक्य मेरा॥

(१०१)

है मार्ग प्राणायम ध्यान भी है, है भक्ति कर्मादिक ज्ञान भी है।
रे जीव! प्यारे! पथ हैं घने ही, ले जा रहे हैं सब तत्त्वमें ही॥

(१०२)

तू योगसे पापनको मिटा रे, ले जीत दोनों मन प्राण प्यारे!।
सामर्थ्य आस्था बल योग देगा, कूटस्थ भूमा दिखलाय देगा॥

(१०३)

चिन्ता मिटावे यह योग-विद्या, ऊँचा चढ़ावे यह योग-विद्या।
माया भगावे यह योग-विद्या, भूमा लखावे यह योग-विद्या॥

(१०४)

प्रेमी बनावे यह योग प्यारे !, दे शान्ति आनन्द अखंड प्यारे ! ।
है योग निष्कंटक राज्य दाता, कंगालको श्रीपति है बनाता ॥

(१०५)

जो चाहिये योग किये मिले है, ना एक रस्ता सबके लिये है ।
ले तू सहारा गुरु-पादका रे, जो वे सिखावें कर नित्य प्यारे ॥

(१०६)

संसार-चिन्ता सब त्याग दे रे, उत्साहसे तू कर योग ले रे ।
आगा न पीछा कुछ सोच रे तू, जो देय आज्ञा गुरु मान ले तू ॥

(१०७)

जो कार्य हो सो कर शीघ्र ले रे, आलस्यको पास न आन दे रे ।
आ मृत्यु जावे कब क्या पता है, सामर्थ्य भी ना रहता सदा है ॥

(१०८)

आ काल जावे क्षण एक माहीं, रे जीव ! जल्दी कर देर नाहीं ।
क्यों बाट तू देखत कालकी रे, हो योग-आरूढ अभी अभी रे ॥

(१०९)

कल्याणकारी सुख शान्ति कर्ता, है योग सच्चा भव-रोग-हर्ता ।
संसारके भोगन रोग जानी, दे त्याग योगी बन तु अमानी ॥

(११०)

हैं भोग बेड़ी दृढ़ बाँधते हैं, दे जन्म वे ही फिर मारते हैं ।
आनन्ददाता भव-बन्ध-हर्ता, है योग प्यारे ! निज-तन्त्र-कर्ता ॥

(१११)

क्यों तुच्छ भोगों हित दीन होता, बाराह-कुत्ता सम आयु खोता।
क्यों बैल घोड़े सम बोझ ढोता, क्यों व्यर्थ गाता फिर व्यर्थ रोता॥

(११२)

योगार्थ ही है नर देह पाई, क्यों योगकी ना करता कमाई।
क्यों चूकता है कर योग ले रे, चिन्ता बिरानी तज तात दे रे॥

(११३)

क्यों भौंकता है नहिं श्वान है तू, पत्ते चरे क्यों बकरी न है तू।
योगेश हो जा पद विष्णु पा रे, संसार माहीं मत लौट आ रे॥

(११४)

निस्सीम आत्मा बन शुद्ध प्यारे !, ना जन्म ही ले मर भी न जा रे।
बेहद आनन्द-समुद्र हो जा, कूटस्थ भूमा शिव इन्द्र हो जा॥

(११५)

जो लेश इच्छा मनमें रखेगा, कूटस्थ भूमा नहिं पा सकेगा।
निर्मूल इच्छा कर सर्व दे रे, निःशोक आत्मा कर प्राप्त ले रे॥

(११६)

विश्वेश राजा निज राज्य देता, क्यों एक मुट्ठी रज माँग लेता।
जो राज्य त्यागें रज माँग लेते, धिक् धिक् उन्हें हैं श्रुति-संत देते॥

(११७)

दाता महा दान अपूर्व देता, स्वाराज्य देता हर दुःख लेता।
पा राज्य निष्कंटक स्वस्थ हो जा, विक्षिप्त ना हो सुख नींद सो जा॥

(११८)

कर्ता सभीका प्रभु विश्व भर्ता, क्यों तू बने है फिर आप कर्ता ।
दे काट बेड़ी अभिमानकी रे, निर्मुक्त हो जा बन जा सुखी रे ॥

(११६)

संसारका तू यश चाहता है, स्वर्गादिका भी सुख माँगता है ।
मिथ्या पदार्थोंपर है लुभाया, विश्वेश साक्षी मनसे भुलाया ॥

(१२०)

आनन्दके सागरमें न न्हाना, तालों तलैयों गिरि खेद पाना ।
अच्छा नहीं है तज काम दे रे, हे ईश-प्रेमी ! भज राम ले रे ॥

(१२१)

संसार साथी सब स्वार्थके हैं, पक्के विरोधी परमार्थके हैं ।
मारा फिरै है जिनके लिये तू, जंजीर हैं वे सच जान ले तू ॥

(१२२)

तू झूँठ बोले जिनके लिये है, चोरी करे हिंसक भी बने है ।
देगा न कोई दुखमें सहारा, भाई भतीजे सुत मित्र दारा ॥

(१२३)

तू दुःख पाता जिन हेतु है रे, बाँटे नहीं वे दुख-लेश तेरे ।
हैं विघ्न कर्ता तव मार्गमें रे, जो श्रेय चाहे तजि संग दे रे ॥

(१२४)

संसारसे होकर तू उदासी, एकान्तमें जा भज विश्व साक्षी ।
सन्मित्र सो जीवन सर्वका है, भूले उसे जीवन सो वृथा है ॥

(१२५)

जो ब्रह्मको ध्यावत तू मरेगा, तो ब्रह्ममें तू निश्चय ही मिलेगा।
अभ्यास ऐसा यदि तू करेगा, संसारसे निश्चय तू तरेगा ॥

(१२६)

संसार माहीं नहिं लौट आवे, आनन्दके सागरमें समावे।
कैवल्य भूमा पद विष्णु पावे, निर्द्वन्द्व होवे, भय, शोक जावे ॥

(१२७)

कल्याणकी है यदि तीव्र इच्छा, उत्साहसे तू भज ईश सच्चा।
जीते हुए ध्यान यथा करेगा, सो ध्यान प्यारे! मरते फुरेगा ॥

(१२८)

ब्रह्मांडका रक्षक प्राण दाता, विश्वेश विश्वम्भर विश्व ज्ञाता।
सर्वत्र व्यापी सबका प्रकाशी, बुद्धी गुहा माँहि सदा निवासी ॥

(१२९)

सो मित्र तेरा नित साथ है रे, रक्षा करे सोवत जागते रे।
तू योगसे खोज लगा उसीकी, आशा कभी भी कर ना किसीकी ॥

(१३०)

है योग प्यारे! भयको भगाता, रोते हुए प्राणिनको हँसाता।
हो योग आरूढ अभी अभी रे, हो नित्य योगी न कभी कभी रे ॥

(१३१)

ज्यों ढोर क्यों जीवन है विताता, क्यों तुच्छ तू भोगनमें लुभाता।
जा भूल संसार, न दुःख पा रे, हो सिद्ध योगी भवमें न जा रे ॥

(१३२)

प्राचीन योगी सम वर्त प्यारे !, हो धीर योगी तज भोग सारे।
आनन्दके सागर माँहि न्हा रे, कूटस्थ माँही डुबकी लगा रे॥

(१३३)

संतान है तू मनुराजकी रे, राजर्षि ज्यों ईश्वर हेतु जी रे।
साठों घड़ी ही कर योग जीसे, निश्चिन्त होके डर ना किसीसे॥

(१३४)

क्यों तू पड़ा है धन लोभमें रे, ना साथ तेरा यह द्रव्य दे रे।
आयुष्य तेरा दिन चारका है, ऐश्वर्यमें क्यों फिर भूलता है॥

(१३५)

कर्तव्य तेरा हरि-भक्ति है रे, विश्वेशको ही भज मुक्ति ले रे।
है धन्य सोई पद विष्णु पावे, धिक्कार है जो भव माहिं जावे॥

(१३६)

विक्षिप्त है चंचल है बली है, सो चित्त जल्दी टिकता नहीं है।
आरम्भ जल्दी कर योग प्यारे !, यों ही नहीं काल वृथा विता रे॥

(१३७)

जो भोगमें हो मन लिप्त तेरा, ना भोग पावे दुख हो घनेरा।
भोगानुरागी बहु भाँति रोवे, जावे जहाँ ही सुखसे न सोवे॥

(१३८)

विश्वेशमें ही मनको लगा रे, ना एक भी तू क्षण खो वृथा रे।
ना हो दुखी तू घबरा न जा रे, निर्द्वन्द्व होके कर योग प्यारे॥

(१३९)

हो कष्ट थोड़ा यदि योग माँहीं, हे जीव ! सो निश्चय कष्ट नाहीं ।
सो दुःख मिथ्या सुख नित्य देवे, दे शान्ति पूरी हर दुःख लेवे ॥

(१४०)

रे हो दुखी ना उस दुःखसे तू, टोटे नफेमें मत ध्यान दे तू ।
तू जा रहा है सुख-सिन्धुमें रे, क्यों कंकड़ों-कंटकसे डरे रे ॥

(१४१)

प्यासा सुधाका जलका नहीं है, पीयूषका सिन्धु समीप ही है ।
जो धूल तेरे पगमें लगे है, क्यों तू वृथा ही उससे भगे है ॥

(१४२)

जो तू डरे है उस दुःखसे रे, संसारमें जा तज योग दे रे ।
नाँही कभी तू दुखसे छुटेगा, जावे जहाँ ही तहँ तू मिटेगा ॥

(१४३)

प्रह्लाद क्या क्या दुख ना उठाया, राजा हरिश्चन्द्र सहा न क्या क्या ।
रे मूढ़ ! क्यों तू घबरावता है, हो धीर सोई सुख पावता है ॥

(१४४)

जो कष्टसे तू इतना डरे है, क्यों नाम योगी अपना धरे है ।
संसारमें जा तज योग दे रे, ले जन्म लाखों भज भोग ले रे ॥

(१४५)

जो कष्ट बीता अब होय जो है, मिथ्या सभी है नहिं सत्य सो है ।
जो आय जावे रहता न जो है, क्यों तू खुशीसे सहता न सो है ॥

(१४६)

है दुःख मिथ्या सहता नहीं क्यों, आनन्दसे तू रहता नहीं क्यों ?।
जो आज आवे कल ना रहे है, क्यों तू वृथा ही जलता रहे है ॥

(१४७)

तू कष्ट लाखों सहता रहा है, तो भी नहीं तू उनसे मरा है ।
जो जो करे ईश भला करे है, क्यों हाय हा तू करिके मरे है ॥

(१४८)

रो रो वृथा क्यों दुख है बढ़ाता, क्यों भूमिको है शिर पे उठाता ।
चिल्ला नहीं तू मत चीख़ ही रे, जो आपड़े सो सह ले सभी रे ॥

(१४९)

जो विश्व सारा तुझको सतावे, तो भी न तेरा कुछ आय जावे ।
जो कष्टको तू सह तात ! लेगा, सो कष्ट भूमा दिखलाय देगा ॥

(१५०)

जो दुःख आवे हित ही करे है, तो कष्टसे तू फिर क्यों डरे है ।
विश्वेश प्यारा जब दे रहा है, क्यों तू खुशीसे नहिं ले रहा है ॥

(१५१)

एकत्वका तू यदि दर्श पावे, तो दुःख तेरे नहिं पास आवे ।
जो इष्टको तू शिर दे झुकाई, ना कष्ट कोई फिर दे दिखाई ॥

(१५२)

जो देहको तू नहिं सत्य माने, संसारको भी जिमि स्वप्न जाने ।
तो दुःख कैसे तुझको सतावे, अज्ञानसे तू दुख है उठावे ॥

(१५३)

आत्मा असंगी निज तंत्र झीना, कूटस्थ है तू परिणामहीना।
छू दुःख नाहीं तुझको सके है, चैतन्य भी क्या जड़से मिले है ? ॥

(१५४)

ना कष्टसे तू भयभीत हो रे, जो कष्ट आवे मत देखि रो रे।
आनन्दसे तू सह कष्ट सारे, कल्याण होवे अति शीघ्र प्यारे॥

(१५५)

जो कष्ट झेले नहिं दीन होवे, सो शूर योगी मन चीन होवे।
है कष्ट प्यारे मन दोष हर्ता, आनन्द दाता सुख-शान्ति-कर्ता॥

(१५६)

ना भूल तू ईश्वर, कष्टमें रे, तो सिद्ध आवे सब हाथ तेरे।
चातुर्यता कष्ट सिखावता है, सन्मित्र ज्यों धैर्य बँधावता है॥

(१५७)

मिथ्या तथा सत्य बतावता है, वैराग्यका पाठ पढ़ावता है।
है कष्ट ही कष्ट मिटाय सारे, देता यही है पद विष्णु प्यारे॥

(१५८)

ना कष्टसे तू भय खा कभी रे, हो देखके कष्ट प्रसन्न जी रे।
हो सिद्ध योगी कर योग पूरा, योगी तभी तू कहलाय शूरा॥

(१५९)

एकान्त माहीं कुटिया बनाके, बस्ती घनीसे रह दूर जाके।
हो वायु अच्छी जल शुद्ध भी हो, कोई जहाँ पे नहिं विघ्न भी हो॥

(१६०)

ऐसी बनावे कुटिया सुहानी, हो धूप वायू अनकूल पानी।
कीड़े मकोड़े नहिं हो जहाँ पे, विक्षेप कोई नहिं हो तहाँ पे॥

(१६१)

एकान्त हो बैठक स्वच्छ भी हो, ऊँची न नीची सम एक-सी हो।
लम्बी न होवे न विशेष चौड़ी, हो युक्त लम्बी अरु युक्त चौड़ी॥

(१६२)

लीपी पुती बैठक माहिं प्यारे, ऊनी कुशा आसन ले बिछा रे।
हो झोंपड़ी पावन शुद्ध भी हो, ना पाप हो पातक भी नहीं हो॥

(१६३)

निन्दा किसीकी नहिं हो जहाँ पे, संकल्प सारे शुभ हों तहाँ पे।
कोई बुरा कार्य वहाँ नहीं हो, जो कार्य होवे शुभ सात्त्विकी हो॥

(१६४)

पूर्वामुखी आसन बैठ जा रे, दोनों करोंको अपने मिला रे।
विश्वेशको सादर शीश ना रे, आचार्य ब्रह्मादि सभी मना रे॥

(१६५)

आरम्भ पीछे कर योग प्यारे, ना अंग कोई अपना हिला रे।
जैसे सिखाया गुरु होय तैसे, प्राणादि सारे प्रिय धार ! वैसे॥

(१६६)

हो प्राप्त ज्यों ज्यों मन शुद्धताई, त्यों त्यों लहैं साधक सिद्धताई।
है सिद्ध पूरी जब त्याग होई, संसार सम्बन्ध न होय कोई॥

(१६७)

पंचायतोंमें मत भाग ले रे, संसार-नाते सब त्याग दे रे।
विश्वेशमें ही कर राग ले रे, आसक्तियों पे धर आग दे रे॥

(१६८)

सामान कोई रख पास नाहीं, चिन्ता न कोई कर चित्त माहीं।
दो चार चीज़ें रख पास ले रे, ज्यादा बखेड़ा कर दूर दे रे॥

(१६९)

ना वस्तु कोई अपनी बना रे, संतुष्टताकी गुदड़ी सिला रे।
जो वस्तु कोई अपनी बनावे, संसारमें सो गिर कष्ट पावे॥

(१७०)

जो होय तेरा सबको हटा दे, 'मैं' और 'मेरा' मनसे मिटा दे।
सादा बना जीवन स्वच्छ खासा, हो जा निराशी तज सर्व आशा॥

(१७१)

राजी-खुशीसे दिन तू बिता रे, हो कष्ट तो भी मनमें न ला रे।
ना हाँक गप्पें कम बोल प्यारे, बातें पुरानी सब भूल जा रे॥

(१७२)

बीती हुई की कर याद रो ना, क्या होय आगे कर सोच सो ना।
जो हो जरूरी कर कार्य सोई, ना रंज कोई ग़म भी न कोई॥

(१७३)

चीज़ें जरूरी उपयोगमें ला, ना इन्द्रियोंको जग माहिं फैला।
जो जाँय वे बाहर रोक दे रे, जाने उन्हें दे मत भोगमें रे॥

(१७४)

ना वाच्य चीजें धर चित्तमें रे, ना शुद्ध चौका कर छूत दे रे।
संकल्प मैला कर चित्त दे रे, संकल्प कोई मनमें न ले रे॥

(१७५)

हो युक्त योगी कर चित्त शान्ति, आवे न किंचित् मन माँहि भ्रान्ति।
जो कार्य होवे सविचार होवे, निर्दम्भ सच्चा व्यवहार होवे॥

(१७६)

अच्छा बुरा तू करता रहा है, जन्मा किया है मरता रहा है।
जन्मा जहाँ दारुण दुःख पाया, निर्मोह हो जा, तज मोह माया॥

(१७७)

स्वच्छन्द हो जा अब तो अमाया, तापों तिहूँसे बच हो अकाया।
सच्चा सदा ब्रह्म अखण्ड हो जा, निश्चिन्त होके सुख नींद सो जा॥

(१७८)

जो मुक्ति चाहे तम दे भगा रे, दे मार तू राजस दुःखदा रे।
अभ्याससे सत्त्व सदा बढ़ा रे, ले सात्त्विकी जीवन तू बना रे॥

(१७९)

आहार सादा अरु वेष सादा, हो दृष्टि सादी अरु वाक्य सादा।
संकल्प सादा अरु कर्म सादा, हो सात्त्विकी पावन धर्म सादा॥

(१८०)

जैसे बने सत्त्व सदा बढ़ा रे, बाकी बचे दो उनको भगा रे।
निर्मल शीशा अति स्वच्छ जैसे, हो सात्त्विकी निर्मल चित्त तैसे॥

(१८१)

हो सत्त्व जावे अति स्वच्छ ज्योंहीं, जावे तुझे सो तज शीघ्र त्योंहीं ।
निद्रा भगेगी जग जायगा तू, तीनों गुणोंसे लंघ जायगा तू ॥

(१८२)

हो सात्त्विकी तू सब भाँतिसे रे, आने ठगोंको मत पास दे रे ।
योगी जनोंके ठग पास आते, दे लोभ नाना कर भ्रष्ट जाते ॥

(१८३)

नौ ऋद्धियाँ आ मन छोभ देतीं, या सिद्धि आठों हर चित्त लेतीं ।
या नामना या धन: कामनामें, देती फँसा है अथवा दयामें ॥

(१८४)

देखे उन्हें सो फँस शीघ्र जाता, ऐसा गिरे है नहिं थाह पाता ।
ना धीर योगी उनको लखे है, अन्धा वने है वहिरा वने है ॥

(१८५)

ना लोभ माहीं वलि भूप आया, ना बुद्धका था मन क्षोभ पाया ।
निर्वुद्धि योगी बँध जावते हैं, धोखा सयाने नहिं खावते हैं ॥

(१८६)

जो लेश भी है मन मैल लाता, सो मूढ़ योगी गिर गर्त जाता ।
लाखों युगोंसे भटका करे है, रोया करे जन्म धरे मरे है ॥

(१८७)

ना क्रोधमें आ, मत लोभमें जा, ना कामके ही वश क्षोभमें आ ।
आचार सच्चा व्यवहार सच्चा, आने न पावे मन-माहिं इच्छा ॥

(१८८)

देता दिखाई नहिं बीज तृष्णा, हो बीजसे सो बढ़ वृक्ष तृष्णा।
आरूढ़ योगी पलमें गिरे है, जो लेश तृष्णा मनमें धरे है॥

(१८९)

जो एक इच्छा रह शेष जाती, इच्छा हजारों जन जी जलाती।
इच्छा रखे सो गिर जाय है रे, योगी निरिच्छ सुख पाय है रे॥

(१९०)

हो पूर्ण योगी तज सर्व इच्छा, ना भूलके भी रख खर्व इच्छा।
जो शेष इच्छा कुछ भी रखेगा, संसारसे तू तर ना सकेगा॥

(१९१)

वैराग्य पक्का कर भक्ति गाढ़ी, इच्छा लताकी जड़ दे उखाड़ी।
सन्देह चिन्ता भय दे भगा रे, हे तात! जल्दी पद विष्णु पा रे॥

(१९२)

सन्देह छोटे अथवा बड़े हैं, श्रद्धालु योगी मन ना धरे हैं।
श्रद्धा नहीं है नहिं भक्ति ही है, शंका अनेकों गिरना यही है॥

(१९३)

योगी घने ही अभिमान धारें, क्या सत्य क्या झूँठ नहीं विचारें।
योगी न होवे नहिं सिद्ध तौ लों, नाहीं तजेंगे अभिमान जौ लों॥

(१९४)

मैं जानता हूँ पथ सत्य मेरा, मानूँ नहीं मैं, उपदेश तेरा।
हूँ सिद्ध मैं ही गदहे बकें हैं, ये चिन्ह सारे अभिमानके हैं॥

(१९५)

मैं भोगता मैं करता तथा हूँ, मैं गेहका मालिक हूँ बड़ा हूँ।
संसारमें है मुझ-सा न कोई, वेदान्त माने अभिमान सोई ॥

(१९६)

ज्ञानी बने हैं नहीं तत्त्व जाने, ना शास्त्र जाने नहिं ईश माने।
संसार सच्चा हम हैं सयाने, ऐसा कहे हैं अभिमान साने ॥

(१९७)

जो बात मेरी हित मान प्राणी, वर्ते सदा ही मन कर्म वाणी।
होवें सभी निश्चय ही सुखारी, जानो यही है अभिमान भारी ॥

(१९८)

बर्ताव मेरा सब ठीक ही है, ना कार्य मेरा बिगड़े कभी है।
चातुर्यता क्या मुझसे बची है? ऐसी प्रशंसा अभिमान ही है ॥

(१९९)

सर्वज्ञ हूँ मैं सब जानता हूँ, हूँ सत्यवक्ता सबसे खरा हूँ।
ऐसा नहीं है अभिमान अच्छा, कीजो न ऐसा अभिमान बच्चा! ॥

(२००)

'मैं' और 'मेरा' तुझको नचाते, हैं मोहकी कीचड़में फँसाते।
चिन्ता-चितामें तुझको जलाते, संसारके चक्करमें घुमाते ॥

(२०१)

'मैं' और 'मेरा' नित हैं सताते, आरामसे हैं तुझको छुड़ाते।
'मैं' और 'मेरा' रिपु मार दे रे, निर्द्वन्द्व हो जा सुख शान्ति ले रे ॥

(२०२)

जो मारनेमें असमर्थ हो तू, यों ईशके सन्मुख होय रो तू।
'हे ईश ! मेरा हर रोग लीजे, आरोग्य कीजे निज योग दीजे' ॥

(२०३)

ना बाँसरी तू अपनी बजा रे, स्वच्छन्द होके मत गीत गा रे।
हैं ये बढ़ाते अभिमान तेरा, ये ही करें हैं नुकसान तेरा ॥

(२०४)

मीठा सलौना मत चाह खाना, दे छोड़ प्यारे! तनुका सजाना।
ऊँचा कभी तू शिर ना उठा रे, ना नीच होके कर दीनता रे ॥

(२०५)

अच्छा नहीं है अभिमान थोथा, इच्छा बढ़ाता, सुख शान्ति खोता।
दोनों बनाता मन देह रोगी, योगीजनोंको करता वियोगी ॥

(२०६)

निन्दा प्रशंसा रिपु योगके हैं, ये भोग सारे घर रोगके हैं।
ना ख्याति फैला अपनी जरा रे, ज्यों हंस योगी! रह तू छिपा रे ॥

(२०७)

है काम अच्छा गुणको छिपाना, अच्छा नहीं है गुणका दिखाना।
हो सिद्ध जा तू निजको छिपा रे, जो देखना है परमात्म प्यारे! ॥

(२०८)

तू तो भिखारी जगदीशका है, क्यों तू प्रशंसा फिर चाहता है।
जो माँगता है नहिं भूप होता, मिथ्याभिमानी निज सिद्धि खोता ॥

(२०६)

तू माँगता राम-प्रसन्नता है, तू चाहता कृष्ण-दयालुता है।
आरोग्यता या धन चाहता है, तू भागता ही रहता सदा है॥

(२१०)

माँगा करे तू सबसे कृपा है, स्वच्छन्दता तो तुझमें कहाँ है?।
है गर्व तेरा करना वृथा ही, हो जा अमानी तज गर्व भाई!॥

(२११)

ना हो भिखारी कर गर्व ना रे, ऊँचा न हो तू, तज नीचता रे।
ले धार पूरी समता क्षमा रे, छोटा न हो, तू बन जा बड़ा रे॥

(२१२)

धारे जभी तू समता क्षमा रे, तो गुह्य रस्ता खुल जायगा रे।
विश्वेशका दर्शन पायगा रे, ना शत्रुओंसे भय खायगा रे॥

(२१३)

हैं काम क्रोधादि महान् वैरी, ये छीन लेते सब शक्ति तेरी।
दे दोष सारे अपने हटा तू, निर्दोष होके लग योगमें तू॥

(२१४)

हो तू विवेकी, बन तू विरागी, ईशानुरागी जन-संग त्यागी।
तो ताप सारे धुल जायँगे रे, विज्ञान-चक्षू खुल जायँगे रे॥

(२१५)

संकल्प त्यागे भग काम जावे, धारे क्षमा तो नहिं क्रोध आवे।
जो प्राणका संयम तू करेगा, तो मोह-निद्रा झट जीत लेगा॥

(२१६)

एकत्व देखे यदि तू सदा ही, तो क्रोध भागे भय भाग जाई।
देखे जहाँ ही लख ईश ही रे, ना भूल ताको क्षण एक भी रे॥

(२१७)

जो ईश भूले मन हो विकारी, संसारका भी भय होय भारी।
चारों दिशा दें जलती दिखाई, आवे न निद्रा सुख भाग जाई॥

(२१८)

चित्‌सिन्धुमें तू जब डूब जावे, अज्ञान निद्रा नहिं पास आवे।
जो मग्न हो तू हरि-ध्यानमें रे, अज्ञान आवे नहिं पास तेरे॥

(२१९)

विश्वेशमें ध्यान सदा लगा रे, देखे जहाँ ईश्वर देख प्यारे।
कामादि सारे रिपु भाग जावें, ना स्वप्नमें भी तुझ पास आवें॥

(२२०)

जो तामसी भोजन तू करेगा, तो रोग तेरे मनका बढ़ेगा।
ना राजसी ही, नहिं तामसी ही, ले नित्य तू भोजन सात्त्विकी ही॥

(२२१)

जो सात्त्विकी भोजन खायगा रे, आरोग्य तेरा मन होयगा रे।
ताजा सदा भोजन शुद्ध खा रे, बासी बुसैला न अशुद्ध खा रे॥

(२२२)

जो हो रसोई अपनी बनाई, तो बात चोखी सबसे सुहाई।
उत्साहसे इष्ट जिमायके रे, योगी बुभुक्षा अपनी निवेरे॥

(२२३)

या जान यों तू प्रभु दी रसोई, या भोजनोंमें लख देव सोई ।
या मान स्वामी उर जो बसे है, सो पेट मेरा सबका भरे है ॥

(२२४)

ना स्वाद लेने हित भक्ष्य खा रे, खा चुप्प होके मत बोल प्यारे ।
खा तू चबाके नहिं शीघ्रतासे, एकाग्र निश्चिन्त प्रसन्नतासे ॥

(२२५)

दो बार जो भोजन नित्य पावे, आरोग्यता हो, नहिं रोग आवे ।
योगी करे भोजन एक बारी, तो ही भला है शुभ श्रेयकारी ॥

(२२६)

पा तू रसोई तन शुद्ध होके, दे ग्रास मुँहमें मन शुद्ध होके ।
हो भूख पक्की तब ग्रास ले रे, कच्ची क्षुधा ना मुख कौर दे रे ॥

(२२७)

दो भाग तो तू भर अन्नसे रे, पी शुद्ध पानी इक भागमें रे ।
दे भाग चौथा तज प्राण हेतू, ज्यादा कभी भी मत भूल ले तू ॥

(२२८)

खाना निशाका हलका भला है, आहार जूँठा करना बुरा है ।
जो चाहता भीतर चाँदना रे, तो अल्प-भोजी बन नित्य प्यारे ॥

(२२९)

निर्मूल होवे नहिं लोभ जौ लों, कामादि छैओं हटते न तौ लों ।
हैं योगमें ये सब विघ्नकारी, ले जीत छैओं प्रिय ! हो सुखारी ॥

(२३०)

आहार ज्यादा दुखकारि जैसे, सोना घना भी सुख-हारि तैसे।
अच्छा नहीं है, दिनमें न सो रे, आरोग्यताको मत तात! खो रे॥

(२३१)

सोना घड़ी पन्द्रहका कहा है, ले नींद योगी कम तो भला है।
अभ्याससे तू कर नींद थोड़ी, जल्दी न कीजो सुन सीख मोरी॥

(२३२)

पाके सदा भोजन रातका रे, घण्टे भरे ही तक जाग प्यारे!।
शय्या बिछा तापर लोट जा रे, विश्वेश ध्याके सब दे भुला रे॥

(२३३)

दो तीन घण्टे रह रात जावे, दे त्याग शय्या निज इष्ट ध्यावे।
आहार निद्रा समयानुसारी, हों कार्य सारे नियमानुसारी॥

(२३४)

पाँचों यमोंको कर सिद्ध ले रे, शौचादि माँहीं फिर चित्त दे रे।
मुद्रा तथा आसन सीख ले रे, देहेन्द्रियाँ औ मन जीत ले रे॥

(२३५)

जो जो सिखावे गुरुजी दयासे, सो सो करे शिष्य प्रसन्नतासे।
द्वौ प्राण दोनों वशमें न जौ लों, हो प्राणका संयम नित्य तौ लों॥

(२३६)

हो जाय दोनों वश प्राण ज्यों हीं, हो चक्र छैओं वश माँहिं त्यों हीं।
जो चक्र छैओं वश होइ जाई, तो देर नाहीं कुछ सिद्धि माँहीं॥

(२३७)

देवे सहस्रार तभी दिखाई, धारा सुधा चन्द्र वहे सदाई।
कूटस्थ आत्मा स्व-स्वरूप पावे, आनन्दके सागर डूब जावे॥

(२३८)

हो मग्न आत्मा सुखसिन्धु पूर्णम्, कूटस्थ भूमा भव-दुःख चूर्णम्।
तल्लीन होके परमात्म माँही, हो आप ही तू शिव विश्व साँईं॥

(२३९)

सच्चा वही है सुख भी वही है, ना आदि ना मध्य न अन्त ही है।
ज्यों सूर्य आत्मा चमके सदाई, माया अविद्या नहिं पास जाई॥

(२४०)

संसार माया क्षय होय जावे, ना स्वप्नमें भी फिर दृष्टि आवे।
हो सिद्ध योगी कर योग प्यारे, कैवल्य भूमा पद विष्णु पा रे॥

(२४१)

हे तात! जासे मन शुद्ध होई, उत्साहसे तू कर यत्न सोई।
दैवी-कृपासे नर-देह पाई, हो पूर्ण योगी मत चूक भाई॥

(२४२)

हो सिद्ध योगी लग योगमें रे, ना शास्त्र-आज्ञा कर भंग दे रे।
ना सत्यसे तू डिग लेशहू रे, ना राग ही, ना कर द्वेष हू रे॥

(२४३)

दोषों सभीकी जड़ काट दे रे, कामादि कूड़ा सब त्याग दे रे।
जागा सदा ही रह योगमें रे, ना भूलहूके फँस भोगमें रे॥

(२४४)

ज्यादा कभी भी पढ़ तू न भाई, ज्यादा पढ़े मस्तक घूम जाई ।
जो पुस्तकें हों गुरुने बताईं, वे ही पढ़ा कर तू अन्य नाहीं ॥

(२४५)

ले पुस्तकोंसे प्रिय ! योग्य शिक्षा, हो योगकी जो नहिं अन्य शिक्षा ।
रक्षा सदा ही कर योगकी रे, ना बोल ही तू पढ़ भी नहीं रे ॥

(२४६)

तू बोलनेमें प्रभु भूल जाता, सामर्थ्य खोता सुख भी गँवाता ।
बोले पढ़ेसे क्षय योग हो रे, हो मौन जा तू मत शान्ति खो रे ॥

(२४७)

हो कर्ण-मौनी अरु वाक्य-मौनी, हो चित्त मौनी अरु आँख-मौनी ।
हो जा मरा-सा मन जीत ले रे, कूटस्थ भूमा शिव चीन्ह ले रे ॥

(२४८)

कूटस्थ भूमा यदि देख ले तू, अभ्यास तो भी मत छोड़ रे तू ।
'मैं' और 'मेरा' नहिं जाय जौ लों, अभ्यास प्यारे ! कर नित्य तौ लों ॥

(२४९)

'मैं' और 'मेरा' रहते जहाँ लौं, अभ्यासमें ही लग तू तहाँ लौं ।
कूटस्थ भूमा बिच मग्न हो जा, दे अल्पको तू तज पूर्ण हो जा ॥

(२५०)

है पूर्ण भूमा सुख शान्ति दाता, ना अल्प माँहीं सुख लेश भ्राता ।
है अल्प प्यारे ! भय शोक हेतू, ना चाह ताकी कर भूलके तू ॥

(२५१)

इच्छा करेगा यदि अल्पकी रे, तो शान्ति खोवे स्व-स्वरूपकी रे।
हो अल्प त्यागी भज पूर्ण ले रे, श्रेयाभिलाषी ! तज अल्प दे रे ॥

(२५२)

योगी घने ही जब अल्प पाते, अभ्यास त्यागें बन सुस्त जाते।
आलस्य त्यागी नर शान्ति पाते, आलस्य-प्रेमी गिर गर्त जाते ॥

(२५३)

खो शान्ति देवें सुख भी न पावें, घूमें स्वयं औरनको भ्रमावें।
माया पिशाची वश होय जावें, जन्मे मरे हैं बहु कष्ट पावें ॥

(२५४)

माया मरीके मत पास जा रे, सद्ब्रह्ममें ही मन तू लगा रे।
धोखे-घड़ीमें मत तात आ रे, है वस्तु जैसी तस देख प्यारे ॥

(२५५)

'जो जीव है सो शिव सो नहीं है, हैं भिन्न दोनों नहिं एक ही है।
ना एक होंगे यह सत्य ही है', धोखा कहाता पहिला यही है ॥

(२५६)

'कर्ता हि आत्मा नहिं है प्रमाता, भोक्ता वही है बहु जन्म पाता।
सिद्धान्त सच्चा यह ही खरा है', धोखा कहाता यह दूसरा है ॥

(२५७)

'है जीव कैदी त्रय देह माँहीं, होगा कभी भी यह मुक्त नाहीं।
ना है असंगी गुणमें बँधा है', धोखा कहाता यह तीसरा है ॥

(२५८)

'सद्ब्रह्म जो कारण सर्वका है, सर्वज्ञ सोई जग हो गया है।
है विश्व साक्षी अज ही विकारी', चौथा यही है भ्रम खेदकारी ॥

(२५९)

'मिथ्या नहीं है जग सत्य ही है, जो दीखता है सब तथ्य ही है।
वे ईशके ही बन सो गया है', धोखा कहाता यह पाँचवा है ॥

(२६०)

धोखे सभी ये मिट जाय ज्यों ही, सन्देह सारे हट जायँ त्यों हीं।
प्रज्ञान भासे परिपूर्ण सच्चा, सर्वज्ञ हो तू कृतकृत्य बच्चा !॥

(२६१)

सद्ब्रह्म भासे अति स्वच्छ ज्यों हीं, तो कर्म सारे जल जाय त्यों हीं।
श्रेयाभिलाषी ! घुल प्रेममें जा, ब्रह्मानुरागी ! मिल ब्रह्ममें जा ॥

(२६२)

कूटस्थ भूमा सुखसिन्धु राशी, ना आदि ना अन्त अखण्ड साक्षी।
शान्ताब्धि माँहीं डुबकी लगा रे, जा डूब ऐसा मत बाह्य आ रे ॥

(२६३)

कोई किसी आश्रम माँहि होई, सो लीन भूमा पद माँहि होई।
तो भी करे भिक्षुक यत्न कोई, तो लीन जल्दी शिव माँहिं होई ॥

(२६४)

कल्याणकांक्षी रत ब्रह्म माँहीं, चौथा लहें आश्रम शान्ति पाई।
आवे नहीं विघ्न प्रसन्न जी हो, चिन्ता न हो ना मन खिन्न ही हो ॥

(२६५)

संन्यास है आश्रम शुद्ध सच्चा, बाधा न कोई उस माँहिं बच्चा!।
वैराग्य पूरा नहिं होय जौ लों, आ तू न यामें प्रिय पुत्र! तौ लों ॥

(२६६)

सम्पन्न ना साधन चारसे हो, वैराग्य पूरा न विहारसे हो।
सन्यासके तो मत पास जा रे, ना दूसरोंकी कर होड़ प्यारे ॥

(२६७)

ना एक ही औषधि सर्वकी है, न्यारी दवाई हर रोगकी है।
ना एक रस्ता सबके लिये है, रस्ता वही जो सुखके लिये है ॥

(२६८)

तेरे लिये है हित पन्थ सोई, जामें चलेसे सुख शान्ति होई।
आचार्य आज्ञा शिर धार ले रे, हो जा गृही या घर त्याग दे रे ॥

(२६९)

जो तू गृही हो कर कार्य सारे, निष्काम होके हरि हेतु प्यारे।
ना चित्तसे तू शिवको हटा रे, यों दोष सारे मनके मिटा रे ॥

(२७०)

ऐसा बिता जीवन तू सदा रे, जैसे रहें हैं जल पद्म न्यारे।
हो तू विरागी तज राग दे रे, निर्वैर हो जा भज ईश ले रे ॥

(२७१)

जो चाहता है सुख नित्य पाना, एकत्र नाहीं कर तू खजाना।
दे कामनायें तज तुष्ट हो रे, आचार सच्चा करि शिष्ट ज्यों रे ॥

(२७२)

न्यायानुसारी धन तू कमा रे, अन्यायके पास कभी न जा रे ।
धर्मानुसारी धनको लगा रे, यों ही वृथा ना धनको लुटा रे ॥

(२७३)

अन्यायसे जो धन है लुटाता, ना कीर्ति पाता, सुख भी न पाता ।
सो है अभागा धन जो दवावे, हाथों बँधा ही मर मूढ़ जावे ॥

(२७४)

जो द्रव्य जोड़े, नहिं शान्ति पाता, है जोड़नेमें दुख ही उठाता ।
जोड़े रखावे तज अन्त जाता, लोभी कभी भी कुछ भी न पाता ॥

(२७५)

जो स्वार्थमें है नर डूब जाता, ना दूसरोंका वह तर्स खाता ।
रोना सुने है नहिं दूसरोंका, देखे नहीं है दुख निर्धनोंका ॥

(२७६)

लोभी बने है अति नीच खोटा, खोदे प्रतिष्ठा बन जाय छोटा ।
ना कष्ट देखे अपमान नाहीं, भावे उसे है धन खैंचना ही ॥

(२७७)

सम्पत्ति माता, धन बाप ताका, सम्पत्ति बेटी धन पुत्र वाका ॥
है द्रव्य चाची अरु दाम चाचा, ना ईश दूजा धन ईश साँचा ॥

(२७८)

माया नदीके वश होय है सो, आरामकी नींद न सोय है सो ।
लोभी मती होय उदार हो तू, दानी जनोंमें सरदार हो तू ॥

(२७६)

दे भाग तू आश्रित प्राणियोंको, जो दे सके दे अधिकारियोंको ।
जो निर्धनी हो, तज दीनता तू, श्रेयाभिलाषी वन सर्वका तू ॥

(२८०)

ना दे सके तो मत द्रव्य दे रे, हो विश्व-सेवी मन-कर्म से रे ।
जो चाहता तू अपना भला है, क्यों चीतता औरनका बुरा है ॥

(२८१)

जो चाहता है सबकी भलाई, होता सुखी सो सच जान भाई ।
सेवा सभीकी कर शुद्ध जीसे, ना शत्रुता तू कर रे किसीसे ॥

(२८२)

कोई नहीं है अपना पराया, है सर्वमें ईश्वर ही समाया ।
"मैं" और "मेरा" मनसे भुला रे, हो इष्ट तेरा सबका भला रे ॥

(२८३)

सेवा सभीकी बड़ भाग्य तेरा, हो विश्व-सेवी उपदेश मेरा ।
है विश्वपूजा शिव-विष्णु पूजा, विश्वेश ही है नहिं देव दूजा ॥

(२८४)

पूजा उसीकी कर कर्म वाणी, सर्वस्व देके बन जा अमानी ।
तेरा नहीं है सब है उसीका, दे दे उसीको बन जा उसीका ॥

(२८५)

ना भूलके भी फल चाह प्यारे, भूमा सुधामें लय होय जा रे ।
पर्दा दुईका मनसे हटा रे, अद्वैत हो जा तज द्वैतता रे ॥

(२८६)

है एकता भासत एकसी रे, निन्दा प्रशंसा सम एक ही रे।
ना कीर्ति ही है अपकीर्ति नाहीं, है भेद मिथ्या शिव शुद्ध माँहीं ॥

(२८७)

है कौन अच्छा अरु क्या बुरा है, है हर्ष कैसा अरु शोक क्या है।
कैसा सयाना पगला कहाँ है, जो एक कूटस्थ यहाँ वहाँ है ॥

(२८८)

है द्वेष कैसा अरु राग कैसा, आदेय कैसा अरु त्याग कैसा।
है बंध कैसा अरु मोक्ष क्या है, जो एक प्यारा सबमें बसा है।

(२८९)

क्या कर्म है और अकर्म क्या है, क्या धर्म है और अधर्म क्या है।
है हानि कैसी अरु लाभ क्या है, जो एक भूमा सम एकसा है ॥

(२९०)

हो शान्त मौनी समचित्त प्यारे, आरोग्यता हो अथवा व्यथा रे।
[illegible] माँहीं मनको लगा रे, सोते तथा जागत ना भुला रे ॥

(२९१)

ध्या ब्रह्म ही तू प्रति श्वासमें रे, प्रत्येक माहीं लख तू उसे रे।
अद्वैतता अद्भुत तेजसे रे, ब्रह्मांडकी दे ढक वस्तुएँ रे ॥

(२९२)

अद्वैतता ही धर ध्यान माँहीं, सर्वत्र सोही लख अन्य नाहीं।
तल्लीन हो जा शिव एकमें रे, ज्यों नौन ढेली लय सिन्धुमें रे ॥

(२६३)

ज्यों ही अहंकार विलाय जावे, माया अविद्या मुख ना दिखावे।
कूटस्थ साक्षी उरमें प्रकाशे, सर्वत्र सोही सब माँहि भासे॥

(२६४)

सर्वत्र भूमा सबका प्रकाशी, सर्वानुभासी सुख-सिन्धु राशी।
जो ब्रह्म जाने वह ब्रह्म होई, तू ब्रह्म ही है नहिं अन्य कोई॥

(२६५)

पर्याप्त नाहीं इक ही समाधी, जावे न जल्दी अभिमान व्याधी।
वैराग्य अभ्यास बढ़ावता जा, संसार-आसक्ति घटावता जा॥

(६६)

ऐश्वर्यमें तू मत चित्त दे रे, ना भोग चाहे मत मित्र हेरे।
उत्साहसे योग सदा किये जा, वैराग्यमें चित्त तथा दिये जा॥

(२६७)

ना चाह होवे तुझको किसीकी, ना ऋद्धिकी ही नहिं सिद्धिहीकी।
हो नित्य योगी बन सिद्ध योगी, ब्रह्मात्म-योगी जड़ता-वियोगी॥

(२६८)

जो इष्ट हो तो भज कृष्ण प्यारा, ले राम या शंकरका सहारा।
आदित्य देवी गणनायका या, हो भक्त सच्चा सब हैं अमाया॥

(२६९)

है देव तेरा सबमें समाया, स्वामी सभीका अज मुक्त माया।
है देव सारा सब देव ही है, दूजा नहीं केवल ब्रह्म ही है॥

(३००)

है देव प्यारा सब मन्दिरोंमें, कूचे गलीमें गिरि-कन्दरोंमें ।
बंगालमें है अरु मध्यमें है, पंजाबमें है अरु सिन्धमें है ॥

(३०१)

है मालवेमें मरुदेशमें है, है बम्बईमें मदरासमें है ।
है चीनमें तिब्बतमें तथा है, जापानमें काबुलमें यथा है ॥

(३०२)

है एशियामें अरु अफ्रिकामें, इँगलैंड यूरोप अमेरिकामें ।
पातालमें है अरु स्वर्गमें है, पोलानमें है अपवर्गमें है ॥

(३०३)

पत्ते हरे हैं उसने बनाये, हैं फूल नाना रँगके खिलाये ।
वर्षा झड़ी शीतलकी करे सो, खेती बग़ीचे जलसे भरे सो ॥

(३०४)

सो वृक्षके ऊपर कूकता है, सो होयके बालक रूठता है ।
सोई रसोई घरमें पकाता, है आप पीवे अरु आप खाता ॥

(३०५)

पौधे वही है छुपके उगाता, है केश सोई शिरके बढ़ाता ।
है वायुको भी शिव ही चलाता, रोते हुओंको वह ही हँसाता ॥

(३०६)

है पास तेरे नहिं दूर है सो, जो जो करे तू सब ही लखे सो ।
जो सोचता तू वह जान लेता, चेष्टा सभी ही पहिचान लेता ॥

(३०७)

है प्राण तेरा वह ही चलाता, सो रक्त तेरे तनमें घुमाता।
आहार तेरा वह ही पचाता, जो जो करे तू वह ही कराता॥

(३०८)

जो तू करे है वह ही करे है, जाने सभी है मनसे परे है।
साक्षी सदा रक्षक साथ तेरे, सच्चे संगमें कर प्रेम ले रे॥

(३०९)

तू ध्यान वाका धर सर्वदा रे, सोते तथा जागत भूल ना रे।
पूजा उसीकी कर ऊपरी रे, या मानसी या जप नाम ही रे॥

(३१०)

जाऊँ जभी दफ्तर साथ जाता, लौटूँ तभी मैं तब लौट आता।
खाता वही है मुझको खिलाता, ऐसे विचारा कर नित्य भ्राता!॥

(३११)

प्रेमी उसीका बन पूर्ण प्रेमी, खो जा उसीमें परिपूर्ण प्रेमी।
तो दर्श होगा उसका तुझे रे, देंगे दिखाई सब विश्वमें रे॥

(३१२)

देंगे दिखाई सब रूपमें वे, भासें अरूपी बहु रूपमें वे।
सम्पूर्ण विस्पष्ट न दें दिखाई, तौ लों सदाही कर योग भाई!॥

(३१३)

तल्लीन हो जा परमात्म माँहीं, वे रूप वे नाम स्व-आत्म माँहीं।
संशुद्ध संवित् जग शून्य माँहीं, आनन्द सच्चित् परिपूर्ण माँहीं॥

(३१४)

खो आपको दे लय होय जा रे, उत्साह पूरा मनमें बढ़ा रे।
उत्साहसे व्यापत कष्ट नाहीं, हो योग पूरा कुछ काल माहीं॥

(३१५)

अभ्यास वैराग्य बढ़ा सदाई, जौ लों नहीं 'मैं' 'मम' भूल जाई।
ना गोप्य तू मंत्र बता किसीको, ना सिद्धि सामर्थ्य जता किसीको॥

(३१६)

है मन्त्र तो वाचक ब्रह्म वाच्यम्, या मन्त्र है लक्षक ब्रह्म लक्ष्यम्।
ना ब्रह्म आता मन वाक्यमें है, तो भी रहै सो शुचि मंत्रमें है॥

(३१७)

ले मन्त्र तू सद्गुरुसे सयाने !, तू मन्त्रसे शाश्वत ब्रह्म जाने।
धो पाप तेरे सब मन्त्र देगा, निर्देश्य कूटस्थ बताय देगा॥

(३१८)

साठों घड़ी ही जप मन्त्र प्यारे !, ना स्वप्नमें भी मनसे भुला रे।
चिल्लायके या जप मन्त्र धीरे, या चुप्प होके मनमाँहिं ही रे॥

(३१९)

चिल्लायके हो जप श्रेष्ठ है सो, धीरे जपै तो अति श्रेष्ठ है सो।
प्यारे ! जपे जो मन माहिं ही रे, अच्छा सभीसे जप मानसी रे॥

(३२०)

बैठा खड़ा या जप चालता भी, लेटा हुआ भी उठता हुआ भी।
ना श्वास कोई जपहीन जावे, सोते हुए भी जप ही सुहावे॥

(३२१)

जो श्वास लेवे जब श्वास काढ़े, जो रक्त-बिन्दू तनु माहिं बाढ़े ।
जो-जो अणू या तनको बढ़ावे, कोई क्रिया ना बिनु जाप जावे ॥

(३२२)

ब्रह्मांड सारा शुचि मंत्र गावे, आकाशमेंसे ध्वनि मंत्र आवे ।
चैतन्य गावें जड़ मंत्र गावें, गाते हुए ही सब दृष्टि आवें ॥

(३२३)

क्या बाह्य क्या भीतर मंत्र बोले, क्या पास क्या दूर स्व-मंत्र बोले ।
सर्वत्र बोले सब काल बोले, वादित्र बोले स्वर ताल बोले ॥

(३२४)

है मंत्र ही केवल एक सच्चा, तल्लीन हो जा उस माहिं बच्चा ! ।
निर्भीक हो निर्मल होय जा रे, विश्वेशका हे सुत ! दर्श पा रे ॥

(३२५)

विश्वेश दे दर्श समाधि माँहीं, आद्यन्त जाका अरु मध्य नाहीं ।
आधार सारे जगका वही है, सारे सुखोंका सुख एक ही है ॥

(३२६)

ऐसी अवस्था थिर ना रहे है, ज्यों कौंधि विद्युत् क्षणमें छुपे है ।
सर्वेश त्यों ही छुप शीघ्र जावे, संदृष्टिसे ओझल होय जावे ॥

(३२७)

अभ्याससे हो थिर चित्त ज्यों ज्यों, बाढ़े उजाला उर माहिं त्यों त्यों ।
अभ्याससे तू कर ले उजारा, विस्पष्ट भासे तब देव प्यारा ॥

(३२८)

अभ्यास वैराग्य किये चला जा, उत्साहसे धैर्य धरे वढ़ा जा ।
कूटस्थ माँहीं थिर दृष्टि होवे, कूटस्थ हो तू सुख नींद सोवे ॥

(३२६)

अभ्यासको तू मत छोड़ दे रे, वैराग्यसे ना मुख मोड़ ले रे ।
जो धीर होते रण जीत आते, जो भीरु होते मुख मोड़ जाते ॥

(३३०)

स्वाध्याय प्रज्ञा शुभतर्क जे हैं, वा शुद्ध भूमातक जा सके हैं ।
हैं योगमें वे करते सहाई, ले तू सहारा उनका सदाई ॥

(३३१)

चित्तेन्द्रियाँ जो वश होंय तेरे, तो वे सहारा परिपूर्ण दें रे ।
योगानुरागी सम चित्त हो रे, श्रेयाभिलाषी ! अभिमान खो रे ॥

(३३२)

लोभानुरागी फँस लोभ जाते, नाहीं कभी वे सुख शान्ति पाते ।
एकाग्रता जे नहिं पा सके हैं, वे योग-प्रासाद न जा सके हैं ॥

(३३३)

स्वाध्यायसे शुद्ध विचारसे या, अभ्याससे और विरागसे या ।
या प्राण विच्छेदन धारणासे, आलोक प्रज्ञा कर साधनासे ॥

(३३४)

हो तीव्र प्रज्ञा अरु शुद्ध भी हो, एकाग्रता होय निरोध भी हो ।
आचार्यसे तू तब मर्म पावे, क्या सत्यता है, पहिचान जावे ॥

(३३५)

जैसी बतावे गुरु सत्यता रे, ता मैं लगा तू निज बुद्धि प्यारे ! ।
ले तू सहारा गुरु देवका रे, जो होय शंका सब ही मिटा रे ॥

(३३६)

शंका मिटेंगी जब सर्व तेरी, हो जाय प्रज्ञा दृढ़ स्वच्छ तेरी ।
लागे पिपासा निज तत्त्वकी रे, सत्तत्त्व माँहीं लग जाय जी रे ॥

(३३७)

हो बुद्धि तेरी अति सूक्ष्म ज्यों हीं, कूटस्थ माँहीं लय होय त्यों हीं ।
तो योग तेरा अरु प्रेम प्यारे, एकत्र हों, पी फिर तू सुधा रे ॥

(३३८)

सो इन्द्रियाँ जायँ समाधिमें रे, हो शुद्ध संवित् तव सामने रे ।
एकाग्र ही चित्त निरुद्ध होई, है योग सोई अरु सिद्धि सोई ॥

(३३९)

या भाँति सामर्थ्य निरोधसे हो, संयोग तेरा परमात्मसे हो ।
कूटस्थ साक्षात् तव दृष्टि आवे, माया अविद्या भग दूर जावे ॥

(३४०)

हो पूर्ण योगी कर यत्न पूरा, ना अंग कोई रहवे अधूरा ।
हो धैर्यधारी घबरा न जा रे, निश्चिन्त हो, निर्भय हो सदा रे ॥

(३४१)

निर्द्वन्द्व हो योग किये चला जा, ना लौट पीछे बढ़ता सदा जा ।
श्रीराम लाखों शर थे चलाये, लंकेशको थे तब मार पाये ॥

(३४२)

प्रह्लाद नाना दुख थे उठाये, खम्भा तभी तोड़ नृसिंह आये ।
श्रीकृष्ण लाखों रण-मल्ह मारे, पीछे वधा कंस न पूर्व प्यारे ! ॥

(३४३)

हो शूर पूरा रण जीत ले रे, कर्तव्य तेरा वस योग है रे ।
उत्साह सारे दुख है हटाता, है बोझ भारी हलका बनाता ॥

(३४४)

दे प्राण भी तू बन पूर्ण शूरा, ना देख पीछे कर योग पूरा ।
संसार शय्या नहिं पुष्पकी है, काँटों तथा कंकरकी भरी है ॥

(३४५)

हो ईशप्रेमी बन योगप्रेमी, ना वित्तप्रेमी नहिं भोगप्रेमी ।
जन्मा हजारों मरता रहा रे, आगे मरे ना कर यत्न प्यारे ! ॥

(३४६)

हो मृत्यु ऐसी फिर जन्म ना हो, पीछे न खाता यमराजका हो ।
आत्मा अजन्मा मरता नहीं है, क्यों गान ऐसा करता नहीं है ॥

(३४७)

गा गीत ऐसा धर ध्यान ऐसा, हो योग ऐसा अरु ज्ञान ऐसा ।
नीचे न जा तू चढ़ता चला जा, ना लौट पीछे बढ़ता चला जा ॥

(३४८)

अच्छे गुणोंको नित ही बढ़ा रे, हों दोष जो जो क्रमसे हटा रे ।
ना क्षोभ तृष्णा मन माँहिं आवे, ना द्वन्द्व कोई तुझको सतावे ॥

(३४६)

हो चित्त पक्का दृढ़ ठोस पूरा, हो सिंह जैसे बन माहिं शूरा ।
होजा खड़ा तू कर योग प्यारे, संसारसे तू उठ भाग जा रे ॥

(३५०)

हों सारकी सार समाधियाँ रे, सत्कारसे आदरसे सदा रे ।
तो तत्त्व सच्चा तव हाथ आवे, निर्द्वन्द्व हो निर्भय होय जावे ॥

(३५१)

आदेश जो दें श्रुति संत ज्ञानी, सो ध्यान देके सुन हो अमानी ।
प्रत्यक्ष वैसा जब ज्ञान होई, सन्देह किंचित् रहवे न कोई ॥

(३५२)

जो जान ले तू अब तत्त्व चीन्हा, चिन्मात्र संवित् पहिचान लीन्हा ।
चिन्मात्र सत्में टिक नित्य प्यारे, सन्देहसे हो अति मुक्त जा रे ॥

(३५३)

है तत्त्व कूटस्थ अखंड सच्चा, आत्मा अजन्मा शुचि शुद्ध बच्चा ! ।
आनन्दराशी शिव एक साक्षी, सर्वानुभासी सबका प्रकाशी ॥

(३५४)

बे-रूप बे-नाम अलिंग है सो, ना देश ना काल न अंग है सो ।
तीनों अवस्था तिहुँ काल माँहीं, है एक-सा ही घट बाढ़ नाहीं ॥

(३५५)

है एक ही तत्त्व न अन्य कोई, है तत्त्व तू एक अनन्य सोई ।
झीना पुराना नव नित्य है तू, निस्सीम है अद्वय एक है तू ॥

(३५६)

था ब्रह्म अंशी अरु अंश था तू, अज्ञानमें या जब लों दबा तू।
अंशी नहीं है नहिं अंश ही है, ना भोग्य भोक्ता, सब ब्रह्म ही है॥

(३५७)

है ब्रह्म तू भी नहिं अन्य है तू, है एक सर्वत्र अनन्य है तू।
तू एक सत्ता नहिं अन्य सत्ता, है सत्य तू एक अनन्य सत्ता॥

(३५८)

ना भाव ही है न अभाव ही है, ना बैठना है चलना नहीं है।
अच्छा नहीं है कुछ ना बुरा है, तू एक अच्छा सबसे खरा है॥

(३५९)

तू शुद्ध है केवल एक है तू, अद्वैत संवित् न अनेक है तू।
कूटस्थ भूमा अज नित्य साक्षी, सर्वानुभासी सुख पूर्ण राशी॥

(३६०)

ब्रह्मांड सारा उपजा तुझीसे, क्या देश क्या काल हुआ तुझीसे।
आधार तू कारण सर्वका है, तू सर्व ही है सबसे जुदा है॥

(३६१)

सर्वत्र है तू सब ही तुही है, तू सर्वमें है तुझमें सभी है।
तू एक है केवल विश्व सारा, घूमें तुझीमें रवि चन्द्र तारा॥

(३६२)

ब्रह्माण्ड नाना तुझमें फिरे हैं, उत्पन्न हो हो बिगड़ा करे हैं।
जो दीखता सो सब तू बनाया, माया दिखाता पर है अमाया॥

(३६३)

सर्वत्र व्यापी सब विश्व कर्ता, सर्वेश स्वामी बिनु हेतु भर्ता।
होते तुझीमें परिणाम सारे, तो भी कभी तू बदले न प्यारे ॥

(३६४)

है पूर्ण तू पावन दोषहीना, कूटस्थ है अच्युत सूक्ष्म झीना।
होता कभी भी नहिं तू बिकारी, बे अन्त है शाश्वत निर्विकारी ॥

(३६५)

तू निर्विकारी सब तू हुआ है, चैतन्य है तू जड़ तू हुआ है।
तू जंगमी स्थावर भी तुही है, अच्छा बुरा जो कुछ भी तुही है ॥

(३६६)

तू श्रेष्ठता और निकृष्टता तू, नानात्व है तू अरु एकता तू।
प्राणी तुही है बिन प्राण तू है, है देह तू ही अरु जान तू है ॥

(३६७)

तू देश तू काल प्रदेश तू है, संवत् तुही है दिन रात तू है।
है द्रव्य तूही गुण भी तुही है, तू क्या नहीं है सब ही तुही है ॥

(३६८)

मायेश माया शिव जीव भी है, आधार आधेय सभी तुही है।
है बद्ध भी तू अरु मुक्त भी है, है सिद्ध तू साधक भी तुही है ॥

(३६९)

इच्छा तुही ज्ञान क्रिया तुही है, है पूर्ण तूही टुकड़ा तुही है।
है सांख्य तू ही अरु योग तू है, भोक्ता तुही है अरु भोग तू है ॥

(३७०)

तू सूर्य माँही चमका करे है, तू ही नदीमें जल हो वहे है।
तू फूल माँहीं हँसता रहे है, तू सर्व माँहीं रमता रहे है॥

(३७१)

हो सिंह गर्जे मृग होय भागे, हो बिल्लि ताके बन श्वान जागे।
होवे युवा तू बन वृद्ध जावे, हो बाल तू ही मनको लुभावे॥

(३७२)

तू ही भला और तु ही बुरा है, तू ही सुखी तू दुख पा रहा है।
तू पुत्र है और तु ही पिता है, तू ही पता है अरु लापता है॥

(३७३)

तू दृश्य है दर्शन और द्रष्टा, तू कार्य है कारण विश्व स्रष्टा।
है ज्ञेय ज्ञाता अरु ज्ञान है तू, है ध्येय ध्याता अरु ध्यान है तू॥

(३७४)

जीवे तुही है मरता तुही है, अन्नाद है तू अरु अन्न भी है।
तू ही सिखाता अरु सीखता है, तू ही दिखाता अरु दीखता है॥

(३७५)

तू सर्पमें आकर काट जाता, काटे हुएमें घुस कष्ट पाता।
हो गारुडी तू विषको हटाता, तू ही दवा हो दुख है मिटाता॥

(३७६)

मारे तुही काल कराल होके, पाले तुही मातु दयाल होके।
है तू अँधेरा अरु तू उजाला, तू राम गोरा (बलराम) अरु कृष्ण काला॥

(३७७)

है प्यार तू और घृणा तुही है, है तू क्षुधा और तृषा तुही है।
तू क्रूरता और दया तुही है, है क्रोध तू और क्षमा तुही है॥

(३७८)

है देह तू ही मन प्राण तू ही, तू कान चक्षू अरु घ्राण तू ही।
है शब्द संकल्प तथा क्रिया तू, तू ही पुराना नित है नया तू॥

(३७६)

संसारमें रूप घने धरे तू, है तू अरूपी परसे परे तू।
संसारके रूप विरूप माहीं, तू ही अरूपी कछु शेष नाहीं॥

(३८०)

ना रूप तेरा नहिं नाम तेरा, ना अन्त नाहीं परिणाम तेरा।
निर्देश्य निःशेष गुणादि हीना, चैतन्य साक्षी अति सूक्ष्म झीना॥

(३८१)

सामर्थ्य दाता सबका तुही है, चैतन्य कर्ता जड़का तुही है।
सर्वानुभासी सबका प्रकाशी, आनन्ददाता मन बुद्धि साक्षी॥

(३८२)

तू चित्तको चेतन है बनाता, ज्ञानेन्द्रियोंमें रह ज्ञान दाता।
कर्मेन्द्रियोंमें रह कर्म करता, कोई तुझे है नहिं जान सक्ता॥

(३८३)

है देह धारी बिनु देह है तू, तू मृत्युमें है बिनु मृत्यु है तू।
है निर्विकारी परिणाममें तू, है तू अनामी सब नाममें तू॥

(३८४)

ना जन्म ना मृत्यु छुयें तुझे हैं, ना कर्म ना धर्म गहें तुझे हैं ।
अच्छे बुरे ना तुझ पास जाते, ना शीत अरु उष्ण तुझे सुखाते ॥

(३८५)

ना पुण्य ना पाप तुझे लगे हैं, ना हर्ष ना शोक तुझे लहे हैं ।
संसार झोंके न तुझे हिलाते, जाड़ा न गर्मी तुझको सताते ॥

(३८६)

तू शुद्ध है अक्षय नित्य आत्मा, अद्वैत तू एक अजन्म आत्मा ।
माया अविद्या तुझमें नहीं है, कूटस्थ भूमा ध्रुव ठोस ही है ॥

(३८७)

निर्मोह माया अघ सर्व चूर्णम्, आनन्द चित शान्ति पुराण पूर्णम् ।
निर्दोष है अव्यय भेद शून्यम्, सद्ब्रह्म आत्मा अज सर्व मान्यम् ॥

(३८८)

भासे सदा ब्रह्म असंग है तू, सर्वांगधारी बिनु अंग है तू ।
ना ह्रस्व ना दीर्घ अलिङ्ग है तू, बे-रंग निस्संग अनङ्ग है तू ॥

(३८९)

तू शुद्ध है बुद्ध विमुक्ति रूपम्, अद्वैत आत्मा सुख शान्ति रूपम् ।
तुर्या स्वरूपः त्रिपुटी स्वरूपः, सर्वत्र पूर्ण विभु सत्य रूपः ॥

(३९०)

नित्यं विशुद्धं गुण-कर्म-हीनम्, सत्यं पुराणं अति पुष्ट पीनम् ।
ब्रह्माविनाशी सुख-सिन्धु राशी, काशी निवासी शिव सर्व साक्षी ॥

(३६१)

मातेश्वरी मंगलकारिणीकी, वेदाङ्ग वेदान्तप्रचारिणीकी ।
संदेह शंका भयहारिणीकी, योगी यती शोकनिवारिणीकी ॥

(३६२)

गंगा सुधा-धार-बहावनीकी, पापौघहा पापिन-पावनीकी ।
पीयूष वाणी सुनि जीव जागा, आलस्य निद्रा भय शोक त्यागा ॥

(३६३)

योगाङ्ग कीन्हे हित सीख मानी, योगानुरागी शुचि शुद्ध प्राणी ।
पाली अहिंसा मन वाक्य काया, ना दूसरेके मनको दुखाया ॥

(३६४)

बोला सदा ही हित सत्य वाणी, निन्दा कभी भी नहीं की बिरानी ।
ऐसा कभी सत्य नहीं उचारा, जो दूसरेका मन हो बिगारा ॥

(३६५)

झूठी किसीकी नहिं दी गवाही, चीती किसीकी मन ना बुराई ।
ना वस्तु कोई परकी चुराई, बेदामकी वस्तु न ली पराई ॥

(३६६)

हो ब्रह्मचारी बलको बढ़ाया, ना वीर्यको फोकटमें लुटाया ।
ना दान लीन्हा श्रमके विना ही, एकत्र चीजें नहिं कीं वृथा ही ॥

(३६७)

लीपा पुताया घर शुद्ध कीन्हा, न्हाके सदा ही मन स्वच्छ कीन्हा ।
विश्वेश ध्याया मन मैल धोया, आपत्तिको देख कभी न रोया ॥

(३९८)

खाया मिला जो मन स्वस्थ होके, रूखा रसीला मुख हाथ धोके ।
मिष्टान्न खाके नहिं हर्ष पाया, रूखा मिला तो नहिं जी जलाया ॥

(३९९)

खाके घना पेट नहीं फुलाया, ना खाय थोड़ा तनको गलाया ।
ना नींदमें काल वृथा गँवाया, ना जागके रोग कभी बुलाया ॥

(४००)

स्वाध्याय कीन्हा हरि नाम लीन्हा, जो कार्य कीन्हा हरि हेतु कीन्हा ।
एकान्तमें आसन जा जमाया, विश्वेशमाँहीं मनको लगाया ॥

(४०१)

हो संयमी प्राण निरुद्ध कीन्हा, स्वच्छन्दता इन्द्रिन भोग दीन्हा ।
की धारणा सादर ध्यान कीन्हा, अभ्यास कीन्हा तज राग दीन्हा ॥

(४०२)

की भाँति दोकी उसने समाधी, निर्मूल कीन्हीं अभिमान व्याधी ।
हो पूर्ण योगी पद विष्णु पाया, संसार मांहीं नहिं लौट आया ॥

(४०३)

है तुच्छ माया अरु तुच्छ काया, कोई यहाँपर रहने न पाया ।
क्यों भोगमें है मन तू लगाया, विश्वेश भोला ! भज हो अमाया ॥

दूसरा खण्ड
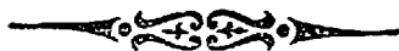
श्रुतिकी टेर

द्वितीयाधिकारी

हरिगीत छन्द

(१)

मानव! तुझे नहिं याद क्या? तू ब्रह्मका ही अंश है।
कुल गोत्र तेरा ब्रह्म है, सद्ब्रह्म तेरा वंश है॥
चैतन्य है तू अज अमल है, सहज ही सुख राशि है।
जन्मे नहीं, मरता नहीं, कूटस्थ है अविनाशि है॥

(२)

निर्दोष है निस्संग है, बेरूप है बिनु रंग है।
तीनों शरीरोंसे रहित, साक्षी सदा बिनु अंग है॥
सुख शांतिका भंडार है, आत्मा परम आनन्द है।
क्यों भूलता है आपको? तुझमें न कोई द्वन्द्व है॥

(३)

क्यों दीन है तू हो रहा? क्यों हो रहा मन खिन्न है?।
क्यों हो रहा भयभीत, तू तो एक तत्त्व अभिन्न है॥
कारण नहीं है शोकका, तू शुद्ध बुद्ध अजन्य है।
क्या काम है रे मोहका, तू एक आत्म अनन्य है॥

(४)

तू रो रहा है किस लिये? आँसू बहाना छोड़ दे।
चिन्ता चितामें मन जले, मनका जलाना छोड़ दे॥
आलस्यमें पड़ना तुझे प्यारे! नहीं है सोहता।
अज्ञान है अच्छा नहीं, क्यों व्यर्थ है तू मोहता?॥

(५)

तू आप अपनी याद कर, फिर आत्मको तू प्राप्त हो।
ना जन्म ले मर भी नहीं, मत तापसे संतप्त हो॥
जो आत्म सो परमात्म है, तू आत्ममें संतृप्त हो।
यह मुख्य तेरा काम है, मत देहमें आसक्त हो॥

(६)

तू अज अजर है अमर है, परिणाम तुझमें है नहीं।
सच्चित् तथा आनन्दघन, आता न जाता है कहीं॥
प्रज्ञान शाश्वत मुक्त तुझमें रूप है नहिं नाम है।
कूटस्थ भूमा नित्य पूरण काम है निष्काम है॥

(७)

माया रची तू आप ही, है आप ही तू फँस गया।
कैसा महा आश्चर्य है? तू भूल अपनेको गया॥
संसार-सागर डूब कर, गोते पड़ा है खा रहा।
अज्ञानसे भवसिंधुमें बहता चला है जा रहा॥

(८)

है सर्वव्यापक आत्म तू सब विश्वमें है भर रहा।
छोटा अविद्यासे बना है, जन्म ले ले मर रहा॥
माने स्वयंको देह तू, ममता अहंता कर रहा।
चिंता करे है दूसरोंकी, व्यर्थ ही है जर रहा॥

(६)

कर्ता बना भोक्ता बना, ज्ञाता प्रमाता बन गया।
दलदल शुभाशुभ कर्ममें निस्संग भी तू सन गया॥
करता किसीसे राग है, माने किसीसे द्वेष है।
इच्छा करे मारा फिरे तू देश और विदेश है॥

(१०)

हैं डाल लीन्ही पैरमें जंजीर लाखों कामना।
रोवे तथा चिल्लाय है, जब कष्टका हो सामना॥
धन चाहता सुत, दार, नाना भोग है तू चाहता।
अंधे कुँवेंमें कर्मके गिर कष्ट नाना पावता॥

(११)

माया नटीके जालमें फँस हो गया कंगाल तू।
दर-दर फिरे है भटकता, जग सेठ मालामाल तू॥
तू कर्म बेड़ीमें बँधा, जन्मे पुनः मर जाय है।
ऊंचा चढ़े है स्वर्गमें फिर नरकमें गिर जाय है॥

(१२)

मजवूत अपने जालमें माया तुझे है बाँधती।
दे जन्म तुझको मारती, गर्भाग्निमें फिर राँधती॥
चिंता क्षुधा भय शोकमय रातें तुझे दिखलावती।
भवके भयानक मार्गमें वहु भाँति है भटकावती॥

(१३)

संसार दलदल माँहि है माया तुझे धसकावती।
तू जानता ऊँचा चढ़ूँ, नीचे लिये है जावती॥
ज्ञानाग्नि होली वालके, माया जलीको दे जला।
ज्ञानाग्निसे जाले विना, टलनी नहीं है यह वला॥

(१४)

यह ज्ञान ही केवल तुझे सुख मुक्तिका दातार है।
ना ज्ञान विन सौ कल्पमें भी छूटता संसार है॥
सव वृत्तियोंको रोककर, तू चित्तको एकाग्र कर।
कर शाँत सारी वृत्तियां, निज आत्मका नित ध्यान कर॥

(१५)

जव चित्त पूर्ण निरुद्ध हो, तव तू समाधी पायगा।
जवतक न होगा चित्त थिर, नहिं मोह तवतक जायगा॥
जव मोह होगा दूर तव तू आत्मको लख पायगा।
जव होय दर्शन आत्मका, कृतकृत्य तू हो जायगा॥

(१६)

मन कर्म वाणीसे तथा जो शुद्ध पावन होय है।
अधिकारि सो ही योगका है जान पाता सोय है॥
हो तू सदाचारी सदा मन इन्द्रियोंको जीत रे।
ना स्वप्नमें भी दूसरोंकी तू बुराई चीत रे॥

(१७)

क्या क्या करूँ, कैसे करूँ, यह जानना यदि इष्ट है।
तो शास्त्र संत बतायँगे, जो इष्ट या कि अनिष्ट है॥
श्रद्धासहित जा शरण उनकी त्याग निज अभिमान दे।
निर्दम्भ हो निष्कपट हो, श्रुति संतको सन्मान दे॥

(१८)

'मैं' और 'मेरा' त्याग दे, मत लेश भी अभिमान कर।
सबका नियंता मानकर विश्वेशका ही ध्यान धर॥
मत मान कर्ता आपको, कर्तार भगवत् जान रे।
तो स्वर्ग द्वार जाय खुल तेरे लिये सच मान रे॥

(१९)

निशि दिन निरंतर बरसती सुख मेघकी शीतल झड़ी।
भीतर न तेरे जा सके है आड़ ममताकी पड़ी॥
ममता अहंता त्याग दे, वर्षा सुधाकी आयगी।
ईर्षा-जलन बुझ जायगी, चिन्ता-तपन मिट जायगी॥

(२०)

ममता अहंता वायुका झोंका न जबतक जायगा।
विज्ञानदीपक चित्तमें तेरे नहीं जुड़ पायगा॥
श्रुति संतका उपदेश तबतक बुद्धिमें नहिं आयगा।
नहिं शांति होगी लेश भी नहिं तत्त्व समझा जायगा॥

(२१)

सिद्धान्त सच्चा है यही जगदीश ही कर्तार है।
सबका नियंता है वही ब्रह्मांडका आधार है॥
विश्वेशकी मर्जी विना नहिं कार्य कोई चल सके।
ना सूर्य ही है तप सके, नहिं चन्द्र ही है हल सके॥

(२२)

'कुछ भी नहीं मैं कर सकूँ, करता सभी विश्वेश है।'
ऐसी समझ उत्तम महा, सच्चा यही आदेश है॥
'पूरा करूँगा कार्य यह, यह कार्य मैंने है करा।'
पूरा यही अज्ञान है, अभिमान यह ही है खरा॥

(२३)

'मैं' क्षुद्र है, 'मेरा' बुरा, 'मुझ' भी मृषा है त्याग रे।
अपना पराया कुछ नहीं, अभिमानसे हट भाग रे॥
यह मार्ग है कल्याणका हो जाय तू निष्पाप रे।
देहादि 'मैं' मत मान रे, 'सोहं' किया कर जाप रे॥

(२४)

यदि शांति अविचल चाहता, यदि इष्ट निज कल्याण है।
संशयरहित सच जान तेरा शत्रु यह अभिमान है॥
मत देहमें अभिमान कर, कुल आदिका तज मान दे।
'नहिं देह मैं' 'नहिं देह मेरा' नित्य इसपर ध्यान दे॥

(२५)

है दर्प काला सर्प, शिर उसका कुचल दे, मार दे।
ले जीत रिपु अभिमानको, निज देहमें से टार दे॥
जो श्रेष्ठ माने आपको, सो मूढ़ चोटन खाय है।
तू श्रेष्ठ सबसे है नहीं, क्यों श्रेष्ठता दिखलाय है॥

(२६)

मत तू प्रतिष्ठा चाह रे, मत तू प्रशंसा चाह रे।
सबको प्रतिष्ठा दे, प्रतिष्ठित आप तू हो जाय रे॥
वाणी तथा आचारमें माधुर्यता दिखला सदा।
विद्या विनयसे युक्त होकर सौम्यता सिखला सदा॥

(२७)

कर प्रीति शिष्टाचारमें वाणी मधुर उच्चार रे।
मन बुद्धिको पावन बना, संसारसे हो पार रे॥
प्यारा सभीको हो सदा, कर तू सभीको प्यार रे।
निःस्वार्थ हो निष्काम हो, जग जान तू निःसार रे॥

(२८)

छोटे बड़े निर्धन धनी, कर प्यार सबको एक सम।
बट्टे सभी शिल एकके, कोई नहीं है बेश कम॥
मत तू किसीसे कर घृणा, सबकी भलाई चाह रे।
तब मार्गमें काँटे धरे, वो फूल उसकी राह रे॥

(२९)

हिंसा किसीकी कर नहीं, जो बन सके उपकार कर।
विश्वेशको यदि चाहता है, विश्वभरको प्यार कर॥
जो मृत्यु भी आ जाय तो उसकी न तू परवाह कर।
मत दूसरेको भय दिखा, रह आप भी सबसे निडर॥

(३०)

निःस्वार्थसेवी हो सदा, मन मलिन होता स्वार्थसे।
जबतक रहेगा मन मलिन, नहिं भेट हो परमार्थसे॥
जे शुद्ध मन नर होय हैं, वे ईश दर्शन पायँ हैं।
मनके मलिन नहिं स्वप्नमें भी, ईश सम्मुख जायँ हैं॥

(३१)

पीड़ा न दे तू हाथसे, कड़वा वचन मत बोल रे।
संकल्प मत कर अशुभ तू, सच बोल पूरा तोल रे॥
ऐसी किया कर भावना, नहिं दूर तुझसे लेश है।
रहता सदा तेरे निकट, पावन परम विश्वेश है॥

(३२)

तू शुद्धसे भी शुद्ध अति जगदीशका नित ध्यान धर।
हो आप भी जा शुद्ध तू, मैला न अपना चित्त कर॥
हो चित्त तेरा खिन्न ऐसा शब्द तू मत सुन कभी।
मत देख ऐसा दृश्य ही, मत सोच ऐसी बात भी॥

(३३)

जो नारि नर भगवद्विमुख संसारमें आसक्त हैं।
विपरीत करते आचरण, निज स्वार्थमें अनुरक्त हैं॥
कंजूस कामी क्रूर जे, पर-दार रत पर-धन हरें।
मत पास उनके जा कभी, जे अन्यकी निन्दा करें॥

(३४)

रह दूर हरदम पापसे, निष्पाप हो निष्काम हो।
निर्दोष पातकसे रहित, निःसंग आत्माराम हो॥
भगवत् परम निष्पाप हैं, तू पाप अपने धोय रे।
भगवत् तुरत ही दर्श दें, अघहीन यदि तू होय रे॥

(३५)

जे लोककी परलोककी, नहिं कामनायें त्यागते।
संसारके हैं श्वान जे, संसारमें अनुरागते॥
कंचन जिन्हें प्यारा लगे, जे मूढ़ किंकर कामके।
नहिं शान्ति वे पाते कभी, नहिं भक्त होते रामके॥

(३६)

रह लोभसे अति दूर ही, जा दर्पके तू पास ना।
बच कामसे अरु क्रोधसे, कर गर्वसे सहवास ना॥
आलस्य मत कर भूल भी, ईर्षा न कर मत्सर न कर।
हैं आठ ये वैरी प्रबल, इन वैरियोंसे भाग डर॥

(३७)

विश्वाससे कर मित्रता, श्रद्धा सहेली ले बना।
प्रज्ञा तितिक्षाको बढ़ा, प्रिय न्यायका कर त्याग ना॥
गम्भीरता शुभ भावना, अरु धैर्यका सम्मान कर।
हैं आठ सच्चे मित्र ये, कल्याणकर भवभीर-हर॥

(३८)

शिष्टाचरणकी ले शरण, आचार दुर्जन त्याग दे।
मन इन्द्रियाँ स्वाधीन कर, तज द्वेष दे, तज राग दे॥
सुख शान्तिका यह मार्ग है, श्रुति सन्त कहते हैं सभी।
दुर्जन दुराचारी नहीं पाते अमर पद हैं कभी॥

(३९)

अभ्यास ऐसा कर सदा, पावन परम हो जाय रे।
कर सत्य पालन नित्य ही, नाहिं झूठ मनमें आय रे॥
झूठे सदा रहते फँसे, मायानटीके जालमें।
तू सत्य भूमा प्राप्त कर, मत कालके आ गालमें॥

(४०)

है सत्य भूमा एक ही, मिथ्या सभी संसार रे।
तल्लीन भूमा माँहि हो, कर तात ! निज उद्धार रे।
कर मुख्य निज कर्तव्य तू, स्वाराज्य भूमा प्राप्त कर।
मत यक्ष राक्षस पूजनेमें, दिव्य देह समाप्त कर॥

(४१)

सच जान जे हैं आलसी, निज हानि करते हैं सदा।
करते हैं उनका संग जे, वे भी दुखी हों सर्वदा॥
आलस्यको दे त्याग तू, मन कर्म शिष्टाचार कर।
अभ्यास कर वैराग्य कर, निज आत्मका उद्धार कर॥

(४२)

मधुमक्षिका करती रहे हैं, रात दिन ही काम ज्यों।
मत दीर्घसूत्री बन कभी, कर तूं निरन्तर काम त्यों॥
तन्द्रा तथा आलस्यमें, मत खो समयको तू वृथा।
कर कार्य सारे नियमसे, रवि चन्द्र करते हैं यथा॥

(४३)

हो उद्यमी सन्तुष्ट तू, गम्भीर धीर उदार हो।
धारण क्षमा उत्साह कर, शुभ गुणनका भंडार हो॥
कर कार्य सर्व विचारसे, समझे विना मत कार्य कर।
शम दम यमादिक पाल तू, तप कर तथा स्वाध्याय कर॥

(४४)

जो धैर्य नहिं हैं धारते, भय देख घबरा जायँ हैं।
सब कार्य उनका व्यर्थ है, नहिं सिद्धि वे नर पायँ हैं॥
चिन्ता कभी मिटती नहीं, नहिं दुःख उनका जाय है।
पाते नहीं सुख लेश भी, नहिं शान्ति मुख दिखलाय है॥

(४५)

गर्मी न थोड़ी सह सकें, सर्दी सही नहिं जाय है।
नहिं सह सके हैं शब्द यक, चढ़ क्रोध उनपर आय है॥
जिसमें नहीं होती क्षमा, नहिं शान्ति सो नर पाय है।
शुचि शान्त मन संतुष्ट हो, सो नर सुखी हो जाय है॥

(४६)

मर्जी करेगा दूसरोंकी, सुख नहीं तू पायगा।
नहिं चित्त होगा थिर कभी, विक्षिप्त तू हो जायगा॥
संसार तेरा घर नहीं, दो चार दिन रहना यहाँ।
कर याद अपने राज्यकी, स्वाराज्य निष्कंटक जहाँ॥

(४७)

सम्बन्ध लाखों व्यक्तियोंसे यदि करेगा तू सदा।
तो कार्य लाखों भाँतिके करता रहेगा सर्वदा॥
कैसे भला फिर चित्त तेरा शान्त निर्मल होयगा।
लाखों जिसे बिच्छू डसें, कैसे बता सो सोयगा॥

(४८)

तू न्यायकारी हो सदा, समबुद्धि निश्चल चित्त हो ।
चिन्ता किसीकी मत करे, निर्द्वन्द्व हो मन शान्त हो ॥
प्रारब्ध पर दे छोड़ सब जग, ईशमें अनुरक्त हो ।
चिंतन उसीका कर सदा, मत जगत्‌में आसक्त हो ॥

(४९)

कर्ता वही धर्ता वही, सबमें वही सब है वही ।
सर्वत्र उसको देख तू, उपदेश सच्चा है यही ॥
अपना भला ज्यों चाहता, त्यों चाह तू सबका भला ।
संतुष्ट पूरा शान्त हो, चिन्ता बुरी काली बला ॥

(५०)

हे पुत्र ! थोड़ा वेग भी यदि दुःखका न उठा सके ।
तो शान्ति अविचल तत्त्वकी, कैसे भला तू पा सके ॥
हो मृत्युका जब सामना, तब दुःख होवेगा घना ।
कैसे सहेगा दुःख सो, यदि धैर्य तुझमें होय ना ॥

(५१)

कर तू तितिक्षा रात दिन, जो दुःख आवे झेल लें ।
वह ही अमर पद पाय है, जो कष्टसे नाहिं है हले ॥
है दुःख ही सन्मित्र सब कुछ दुःख ही सिखलाय है ।
बल बुद्धि देता दुःख पंडित धीर वीर बनाय है ॥

(५२)

बल बुद्धि तेरी की परीक्षा दुःख आकर लेय है।
जो पाप पहिले जन्मके हैं दूर सब कर देय है॥
निर्दोष तुझको देय कर, पावन बनाता है तुझे।
क्या सत्य और असत्य क्या, यह भी सिखाता है तुझे॥

(५३)

तू कष्टसे घबरा न जा रे, कष्ट ही सुख मान रे।
जो कार्य नहिं हो सिद्ध तो भी लाभ उसमें जान रे॥
बहु बार पटकें खाय है, तब मल्ल मल्लन पीटता।
लड़ता रहे जो धैर्यसे, माया-किला सो जीतता॥

(५४)

यदि कष्टसे घबरायके, तू युद्धसे हट जायगा।
तो तू जहाँपर जायगा, बहु भाँति कष्ट उठायगा॥
जन्मे कहीं भी जायके, नहिं मुक्त होगा युद्धसे।
रह युद्ध करता धैर्यसे, जब तक मिले नहिं शुद्धसे॥

(५५)

इसमें नहीं सन्देह जीवन झंझटोंसे युक्त है।
वह ही यहाँ जय पाय है, जो धैर्यसे संयुक्त है॥
समता क्षमासे युक्त ही मन शान्त रहता है यहाँ।
जो कष्ट सह सक्ता नहीं, सुख शान्ति उसको है कहाँ॥

(५६)

जो जो करे तू कार्य कर सब शान्त हो कर धैर्यसे ।
उत्साहसे अनुरागसे मन शुद्धसे बलवीर्यसे ॥
जो कार्य हो जिस कालका, कर तू समयपर ही उसे ।
दे मत बिगड़ने कार्य कोई मूर्खता आलस्यसे ॥

(५७)

दे ध्यान पूरा कार्यमें, मत दूसरेमें ध्यान दे ।
कर तू नियमसे कार्य सब, खाली समय मत जान दे ॥
सब धर्म अपने पूर्ण कर, छोटे बड़ेसे या बड़े ।
मत सत्यसे तू डिग कभी, आपत्ति कैसी ही पड़े ॥

(५८)

निःस्वार्थ होकर कार्य कर, बदला कभी मत चाह रे ।
अभिमान मत कर लेश भी, मत कष्टकी परवाह रे ॥
क्या खान हो क्या पान हो, क्या पुण्य हो क्या दान हो ।
सब कार्य भगवत् हेतु हों, क्या होय जप क्या ध्यान हो ॥

(५९)

कुछ भी न कर अपने लिये, कर कार्य सब शिवके लिये ।
पूजा करे या पाठ, कर सब प्रेम भगवत्के लिये ॥
सब कुछ उसीको सौंप दे, निशि-दिन उसीको प्यार कर ।
सेवा उसीकी कर सदा दूजा न कुछ व्यापार कर ॥

(६०)

सेवक उसीका बन सदा, सबमें उसीका दर्श कर।
'मैं' और 'मेरा' मेट दे, सबमें उसीका स्पर्श कर॥
निर्द्वन्द्व निर्मल चित्त हो, मत शोक कर मत हर्ष कर।
सबमें उसीको देख तू, मत राग, मत आमर्ष कर॥

(६१)

मानुष्य जीवनमें यदपि आते हजारों विघ्न हैं।
जो युक्त योगी होय हैं, होते नहीं मन-खिन्न हैं॥
हो झंझटोंसे युक्त जीवन कुछ न तू परवाह कर।
भगवत् भरोसेसे सदा, सुख शान्तिसे निर्वाह कर॥

(६२)

विद्या सभी ही भाँतिकी ले सीख तू आचार्यसे।
उत्साहसे अति प्रेमसे, मनबुद्धिसे अरु धैर्यसे॥
एकाग्र होके पढ़ सदा, सब ओरसे मन मोड़के।
सबसे हटाकर वृत्तियाँ, स्वाध्यायमें मन जोड़के॥

(६३)

वेदाङ्ग पढ़, साहित्य पढ़, फिर काव्य पढ़ तू चावसे।
पढ़ गणित ग्रन्थन, तर्क शास्त्रन, धर्मशास्त्रन भावसे॥
इतिहास, अष्टादश पुराणन, नीतिशास्त्रन देख रे।
वैद्यक तथा पढ़ वेद चारों, योग विद्या देख रे॥

(६४)

सद्ग्रन्थ पढ़ तू भक्ति शिक्षक, ज्ञानवर्धक शास्त्र पढ़ ।
विद्या सभी पढ़ श्रेयकारिणि, मोक्षदायक शास्त्र पढ़ ॥
आदर सहित अनुरागसे, सद्ग्रन्थका ही पाठ कर ।
दे चित्त शिष्टाचारमें, दुष्टाचरणपर लात धर ॥

(६५)

क्या ग्रन्थ पढ़ने चाहियें, आचार्य यह बतलायँगे ।
पढ़ने नहीं हैं योग्य क्या क्या ग्रन्थ वे जतलायँगे ॥
आचार्यश्री बतलायँ जो, वे ग्रन्थ पढ़ने चाहियें ।
जो ग्रन्थ धर्म विरुद्ध हैं, नहिं देखने वे चाहियें ॥

(६६)

पढ़ ग्रन्थ नित्य विवेकके, मन स्वच्छ तेरा होयगा ।
वैराग्यके पढ़ ग्रन्थ तू बहुजन्मके अघ धोयगा ॥
पढ़ ग्रन्थ सादर भक्तिके, आह्लाद मन भर जायगा ।
श्रद्धासहित स्वाध्याय कर, संसारसे तर जायगा ॥

(६७)

जो जो पढ़े सब याद रख, दिन रात नित्य विचार कर ।
श्रुतियाँ भले स्मृतियाँ पुराणादिक सभी निर्धार कर ॥
अभ्याससे सत् शास्त्रके जब बुद्धि तीव्र बनायगा ।
तो तीव्र प्रज्ञाकी मददसे तत्त्व तू लख पायगा ॥

(६८)

जे नर दुराचारी तथा निज स्वार्थमें रत होय हैं।
गिर कूपमें वे मोहके सुख-शान्तिसे नहिं सोय हैं॥
भटका करे ब्रह्माण्डमें, बहुभाँति कष्ट उठावते।
मतिमन्द श्रुतिके अर्थको सम्यक् समझ नहिं पावते॥

(६९)

मत मोहमें तू फँस कभी, निर्मुक्त हो संमोहसे।
कर बुद्धि निर्मल स्वच्छ, रह तू दूर दुखकर द्रोहसे॥
जब चित्त होगा स्वच्छ, तब ही शान्ति अक्षय पायगा।
जो जो पढ़ेगा शास्त्र तू, सम्यक् समझमें आयगा॥

(७०)

आचार्यद्वारा शास्त्र पढ़, हो शान्त, मन एकाग्रसे।
विक्षिप्तताको दूर करके, बुद्धि और विचारसे॥
कर गर्व विद्याका नहीं, अभिमानसे निर्मुक्त हो।
ज्ञानी अमानी सरल गुरुसे, पढ़ विनय संयुक्त हो॥

(७१)

एकाग्रता, मन शुद्धता, उत्साह पूरा, धैर्यता।
श्रद्धानुराग, प्रसन्नता, अभ्यासकी परिपूर्णता॥
मन बुद्धिकी चातुर्यता, होवें सहायक सर्व ही।
फिर देर कुछ भी नहिं लगे, हो प्राप्त विद्या शीघ्र ही॥

(७२)

हो बुद्धि निर्मल सात्त्विकी, हो चित्त उत्तम धारणा।
हो कठिनसे भी कठिन तो भी सहज हो निर्धारणा॥
हों स्थूल अथवा सूक्ष्म वातें सब समझमें आयँगी।
एक वार भी सुन ले जिन्हें, मस्तिष्कसे नहिं जायँगी॥

(७३)

विद्या सभी कर प्राप्त मत पाण्डित्यका अभिमान कर।
अभिमान विद्याका बुरा, इसपर सदा ही ध्यान धर॥
मत वाद कर न विवाद ही, कल्याणहित स्वाध्याय कर।
क्या सत्य और असत्य क्या, यह जानकर निज श्रेय कर॥

(७४)

विद्या बताती है तुझे क्या धर्म और अधर्म है।
विद्या जताती है तुझे क्या कर्म और अकर्म है॥
विद्या सिखाती है तुझे, कैसे छुटे संसारसे।
विद्या पढ़ाती है तुझे, कैसे मिले भण्डारसे॥

(७५)

गुरु-वाक्यका कर अनुसरण, विश्वास श्रद्धा युक्त हो।
वतलाय है जो शास्त्र, कर आचार संशय मुक्त हो॥
जो जो बताते शास्त्र गुरु, उपदेश सर्व यथार्थ है।
संशय न उसमें कर कभी, यदि चाहता परमार्थ है॥

(७६)

सन्ध्यादि जितने कर्म हैं, सब ही नियमसे पाल रे ।
उत्साहसे अनुरागसे, मन दोष सारे टाल रे ॥
जे कर्म पातकरूप हैं, मत चित्तसे भी कर कभी ।
जो जो करे तू कर्म निशदिन, . शुद्ध मनसे कर सभी ॥

(७७)

हो प्रेम पूरा कर्ममें, परिपूर्ण मन उत्साह हो ।
तन मन लगाकर कर्म कर, फलकी कभी नहिं चाह हो ॥
चातुर्यतासे कर्म कर, मत लेश भी अभिमान कर ।
सब कार्य भगवत् हेतु कर, विश्वेश पूजन मानकर ॥

(७८)

चौथे पहरमें रातके, जब पुण्य ब्रह्म मुहूर्त हो ।
दे त्याग निद्रा प्रथम ही, मत नींदमें अनुरक्त हो ॥
विश्वेशका मन ध्यान कर, कल्याण अपनेके लिये ।
विश्वेशसे कर प्रार्थना, निज भक्ति देनेके लिये ॥

(७९)

जप नाम भगवत् भावप्रियका, भावमें तल्लीन हो ।
हो प्रेम केवल ईशमें, भगवच्चरण मन मीन हो ॥
अपना पराया भूल जा, हरि-प्रेममें अनुरक्त हो ।
आसक्ति सबकी छोड़ केवल विष्णुमें आसक्त हो ॥

(८०)

जप नाम हरिका जोरसे, धीरे भले ही ध्यानमें।
हरि नामका हर रोममेंसे शब्द आवे कानमें ॥
विश्वेशको कर प्यार प्यारे आत्मका कल्याण कर।
सबको मिटा दे, सर्व हो जा, ईशका नित गान कर।

(८१)

सुख शान्तिका भंडार तेरे चित्त माँहीं गुप्त है।
पर्दा हटा, हो जा सुखी, क्यों हो रहा सन्तप्त है॥
सुख-सिन्धु माँही मग्न हो, मन-मैल सारा दे बहा।
हो शुद्ध निर्मल चित्त तू ही विश्वमें है भर रहा॥

(८२)

पावन परम शुचि शास्त्रमेंसे मन्त्र पावन सार चुन।
उनका निरंतर कर मनन, विश्वेशके गा नित्य गुण॥
जो संत जीवन्मुक्त, ईश्वरभक्त पहिले हो गये।
उनकी कथाएँ गा सदा, मन शुद्ध करनेके लिये॥

(८३)

सद्गुरु कृपा-गुण-युक्तका, उठ प्रात ही धर ध्यान रे।
निज देहसे अरु प्राणसे, प्यारा अधिकतर मान रे॥
सिरको झुकाकर दण्डवत कर नमन आठों अंगसे।
कल्याण सबका चाह मनसे, दूर रह जन संगसे॥

(८४)

एकान्तमें फिर जायके, तू वेगका परित्याग कर।
दान्तोन करके दाँत मल, मुख धोय जिह्वा साफ कर॥
रविके उदयसे पूर्व ही, हो शुद्ध जा तू स्नानसे।
शुचि वस्त्र तनपर धारके, कर प्रातसन्ध्या मानसे॥

(८५)

उच्चार पावन मन्त्र कर, मन मन्त्र माँही जोड़कर।
कर अर्थकी भी भावना, भव-वासनाएँ छोड़कर॥
कर ब्रह्मसे मन पूर्ण, सबमें ब्रह्म व्यापक देख रे।
कर क्षीण पापन रेखपर भी मार दे तू मेख रे॥

(८६)

जो कर्म होवे आजका, ले पूर्वसे ही सोच सब।
यह कार्य कैसे होयगा, किस रीतिसे हो और कब॥
जो कार्य जिस जिस कालका हो, पूर्ण मनमें धार ले।
जिस जिस नियमसे कार्य करना हो भले निर्धार ले॥

(८७)

सन्मुख सदा रह ईशके, तेरा सहायक है वही।
करुणा-जलधि हरिकी शरण ले श्रेयकारक है वही॥
जो लेय करुणानिधि शरण, संसार सो ही तर सके।
जिसपर कृपा हो ईशकी, साधन वही है कर सके॥

(८८)

विश्वेशकी ही ले शरण, संसिद्धि तब ही प्राप्त हो।
केवल उसीका कर भरोसा, मात्र उसका भक्त हो॥
जो कुछ तुझे हो इष्ट सो केवल उसीसे माँग रे।
मत कर भरोसा अन्यका, आशा सभीकी त्याग रे॥

(८९)

सच्चे हृदयसे प्रार्थना, जब भक्त सच्चा गाय है।
तो भक्तवत्सल कानमें, वह पहुँच झट ही जाय है॥
विश्वेश करुणाकर तुरत ही भक्तपर करुणा करे।
लाखों करोड़ों जन्मके अघ, एक क्षणमें ही हरे॥

(९०)

सच्चे हृदयकी प्रार्थना, निश्चय सुने जग-वास है।
नहिं भक्तसे है दूर वह, रहता सदा ही पास है॥
ज्यों ज्यों करेगा प्रार्थना, भय दूर होता जायगा।
कर प्रार्थना, कर प्रार्थना, कर प्रार्थना, सुख पायगा॥

(९१)

संसार मिथ्या वस्तुओंमें, यदि तुझे नहिं राग हो।
संशय नहीं, हरि-चरणमें, जल्दी तुझे अनुराग हो॥
कर प्रार्थना विश्वेशसे, 'प्रभु! भक्ति अपनी दीजिये।
हो प्रेम केवल आपमें, ऐसी कृपा प्रभु कीजिये॥'

(६२)

कर प्रार्थना फिर प्रेमसे, 'प्रभु ! मम विनय सुन लीजिये ।
हे नाथ ! मैं भूला हुआ हूँ, मार्ग दिखला दीजिये ॥
मुझ अन्धको प्रभु आँख दीजे, दर्श अपना दीजिये ।
निज चरणकी रज-सेवमें, मुझको लगा प्रभु ! लीजिये ॥

(६३)

संसारसागर पार मैं नहिं जा सकूँ हूँ हे प्रभो ! ।
मल्लाह मेरी नावके नहिं आप जबतक हों विभो ! ॥
उठता यहाँ है ज्वारभाटा, रोक उसको लीजिये ।
संसारसागर पार मुझको शीघ्र ही कर दीजिये ॥

(६४)

सर्वज्ञ हैं प्रभु सर्वविद्, करुणा दयासे युक्त हैं ।
स्वाभाविकी वल क्रियासे, प्रभु सहज ही संयुक्त हैं ॥
नहिं मैं हिताहित जानता, प्रभु ! ज्ञान मुझको दीजिये ।
भूले हुए मुझ पथिकको, भव पार स्वामी ! कीजिये ॥

(६५)

प्रभु ! आपकी मैं हूँ शरण, निज चरण-सेवक कीजिये ।
मैं कुछ नहीं हूँ माँगता, जो आप चाहें दीजिये ॥
सिर आँखसे मंजूर है, सुख दीजिये दुख दीजिये ।
जो होय इच्छा कीजिये, मत दूर दरसे कीजिये ॥

(६६)

हैं आप ही तो सर्व, फिर कैसे करूँ मैं प्रार्थना।
सब कुछ करें हैं आप ही, क्या बोलना क्या चालना॥
फिर बोलना किस भाँति हो, है मौन ही सबसे भला।
रक्षक तुही भक्षक तुही, तलवार तू तेरा गला॥'

(६७)

विश्वेश प्रभुके सामने, कर प्रार्थना इस रीतिसे।
या अन्य कोई भाँतिसे, सच्चे हृदयसे प्रीतिसे॥
जो होय सच्ची प्रार्थना, विश्वेश सुनता है सभी।
विश्वेशकी आज्ञा विना, पत्ता नहीं हिलता कभी॥

(६८)

फिर कार्य कर अपना सभी, दिनका नियमसे ध्यानसे।
एकाग्र होके धैर्यसे, आनन्द मन, सुख चैनसे॥
घबरा न जा, मन शान्त रख, मत क्रोध मनमें ला कभी।
प्रभु देवदेव प्रसन्नता हित, कार्य जो हो कर, सभी॥

(६९)

जब शयनका आवे समय, एकान्तमें तब बैठ कर।
जो कार्य दिनमें हो किया, ले सोच सब मन स्वस्थ कर॥
जो जो हुई हों भूल दिनमें, सर्व लिख ले चित्तपर।
आगे कभी नहिं भूल होने पाय ऐसा यत्न कर॥

(१००)

जो कार्य करना हो तुझे, अच्छी तरहसे सोच ले ।
मत कार्य कोई कर बिना सोचे, बजा ले ठोक ले ॥
सोचे बिना जो कार्य करते, अन्तमें गिर जायँ हैं ।
जो कार्य करते सोचकर, वे ही सफलता पाय हैं ॥

(१०१)

राजा नहुष जैसे गिरा था, स्वर्गसे ऋषि-शापसे ।
आसक्त हों जो भोगमें, हों तप्त वे सन्तापसे ॥
सब कार्य कर तू न्यायसे, अन्यायसे रह दूर तू ।
आश्रय सदा ले धर्मका, मत क्रुद्ध हो, मत क्रूर तू ॥

(१०२)

हो उच्च तेरी भावना, मत तुच्छ कर तू कामना ।
कर्तव्यसे मत चूक चाहे मृत्युका हो सामना ॥
जो पास भी हो मृत्यु तो भी मृत्युसे कुछ भय न कर ।
डरपोक कायर मृत्युसे भयभीत रहते, तू न डर ॥

(१०३)

आचार अपना शुद्ध रख, मत हो दुराचारी कभी ।
मत कार्य कोई रख अधूरा, कार्य पूरे कर सभी ॥
मत तुच्छ भोगोंकी कभी भी भूलके कर कामना ।
है ब्रह्म अक्षय नित्य सुख, कर तू उसीकी भावना ॥

(१०४)

पुरुषार्थ अन्तिम सिद्ध कर, आशा जगत्‌की छोड़ रे।
भय शोकप्रद हैं भोग सब, मुख भोगसे तू मोड़ रे॥
विश्वेश सुखके सिन्धुमें ही चित्त अपना जोड़ दे।
रिश्ता उसीसे जोड़ दे, नाता सभीसे तोड़ दे॥

(१०५)

जैसे झड़ी वर्षातकी सब चर अचरकी जान है।
त्योंही दया विश्वेशकी, सब विश्व जीवनदान है॥
सबपर दया है एक-सी, क्या अज्ञ है क्या प्राज्ञ है।
सबके मिटाती दुःख, सबको ही बनाती तज्ज्ञ है॥

(१०६)

सचमुच मिटाती कष्ट सारे शान्ति अक्षय देय है।
कुंडी उसीकी खटखटा, यदि चाहता निज श्रेय है॥
अध्यात्मका अभ्यास कर, संसारसे वैराग्य कर।
कर्तव्य यह ही मुख्य है, विश्वेशमें अनुराग कर॥

(१०७)

संसार जीवनसे बना, अध्यात्म जीवन आपना।
सुख शान्ति जिसमें पूर्ण, जिसमें दुःख ना, सन्ताप ना॥
जीवन बिता इस भाँतिसे, नहिं प्राप्त फिर संसार हो।
सद्‌ ब्रह्ममें तल्लीन होकर सारका भी सार हो॥

(१०८)

शिष्टाचरणमें प्रीति कर, हो धर्मपर आरूढ़ तू।
हो शुभ गुणोंसे युक्त तू, रह अवगुणोंसे दूर तू॥
जो धर्मपर आरूढ़ हैं, वे शूर होते धीर भी।
वे सत्य निशिदिन पालते, नहिं सत्यसे हटते कभी॥

(१०९)

यदि पुण्यमें रत होयगा, तो धीर तू बन जायगा।
जो पुण्य थोड़ा होय तो भी कीर्ति जग फैलायगा॥
मत स्वप्नमें भी पापका आचार कर तू भूल कर।
निष्पाप रह, निष्काम रह, पापाचरण पर धूल धर॥

(११०)

हो पुण्यमें तू रत सदा, दे दान तू सन्मानसे।
उत्साहसे सुख मानकर, दे दान मत अभिमानसे॥
हैं वस्तु सब विश्वेशकी, अभिमान तेरा है वृथा।
निज स्वार्थ तज कर कार्य कर, बादल करें वर्षा यथा॥

(१११)

अभिमान मत कर द्रव्यका, अभिमान तज दे गेहका।
अभिमान कुलका त्याग दे, अभिमान मत कर देहका॥
कर्मेन्द्रियाँ, ज्ञानेन्द्रियाँ, सब ईशको ही मान रे।
मन बुद्धि शिवको अर्प दे, शिवका सदा कर ध्यान रे॥

(११२)

वैराग्य सच्चा पुण्य है, वैराग्य सच्चा कर्म है।
वैराग्य ही है फल खरा, वैराग्य उत्तम धर्म है॥
दे त्याग अपना आप अपने आपको फिर प्राप्त कर।
हो जा सभी कुछ आप ही, तू आपहीको प्राप्त कर॥

(११३)

कर कार्य सब शिवके लिये, कुछ भी न कर अपने लिये।
सेवा सदा कर विश्वकी, विश्वेश-पूजनके लिये॥
मत भेद रंचक मान रे, विश्वेश ही सब जान रे।
चर या अचर सब विश्वमें, विश्वेश ही पहिचान रे॥

(११४)

इन्द्रादि देवन पूज तू प्यारे, सदा ही हवनसे।
पूजा किया कर ऋषिनकी, स्वाध्याय पाठन-पठनसे॥
संतृप्त पितृन नित्य कर तू श्राद्ध-तर्पण कर्मसे।
श्रद्धा तथा विश्वाससे, मत हो प्रमादी धर्मसे॥

(११५)

अंधे बिना पग हाथवालोंकी मदद कर दानसे।
सेवा किया कर रोगियोंकी देहसे मन प्राणसे॥
मेहमानका सत्कार कर तू खानसे अरु पानसे।
भिक्षुक अतिथि संतुष्ट कर भोजन वसन सन्मानसे॥

(११६)

पशु पक्षि प्राणीमात्रको, आहार दे सन्तुष्ट कर।
जो पाँच करता यज्ञ धर्मात्मा वही कहलाय नर॥
कर नित्य पाँचों यज्ञ तू, तो पुण्य अक्षय पायगा।
अन्तःकरण हो शुद्ध तेरा, शान्त तू हो जायगा॥

(११७)

संध्या क्रिया कर प्रातकी, मध्याह्नकी, फिर रातकी।
संध्या नहीं तीनों करे, सो होय हैं नर पातकी॥
बतलाय तेरा गुरु यथा, उस भाँति कर ईश्वर-भजन।
जबतक रहे तू जागता, मत भूल ईश्वर एक क्षण॥

(११८)

विश्वेशके पूजन भजनमें रह सदा ही मग्न रे।
निज देहको निज बुद्धिको, कर ईशमें संलग्न रे॥
जबतक न हो मन चुप्प, तब तक ईशका धर ध्यान रे।
कर विश्वभरका विस्मरण, विश्वेशको पहिचान रे॥

(११९)

विश्वेश निष्क्रिय है तथापी विश्वका कर्तार है।
जग है विकारी दीखता, विश्वेशमें न विकार है॥
आश्चर्यमय है विश्व यह, संयुक्त द्रष्टा दृश्य है।
विश्वेश कर्ता विश्वका, विश्वेश ही यह विश्व है॥

(१२०)

जो कुछ जगत्‌में भासता, जगदीश ही है भासता।
नहिं आदि है, नहिं मध्य है, नहीं अंतका उसके पता॥
सच्चित् स्वयं ही सिद्ध है, आनन्दसे भरपूर है।
है पास तेरे हर समय, तुझसे नहीं वह दूर है॥

(१२१)

हठयोग प्राणायामका, करना तुझे यदि इष्ट है।
आचार्यसे जा सीख ले, करना स्वयं नहिं श्रेष्ठ है॥
अभ्यास प्राणायामका, आचार्यके कर सामने।
हों नाड़ियाँ सब शुद्ध तेरी, देह कंचनका बने॥

(१२२)

खाने पहिननेमें नहीं आसक्त होना चाहियें।
भोजन करे हलका सदा, सुथरा पहिनना चाहिये॥
कमरा रखा कर स्वच्छ अपना, व्यर्थ ही मत फिर कहीं।
प्रेमी न हो तू स्वादका, छैला चिकनिया बन नहीं॥

(१२३)

छैला चिकनिया होय जो, माया नहीं सो तर सके।
जो त्याग दे विषसम विषय सब, योग सो ही कर सके॥
जो देय धोखा अन्यको, सो आप धोखा खाय है।
धोखा किसीको दे नहीं, यदि इष्ट अपना भाय है॥

(१२४)

नहिं स्वार्थ-साधन है भला, मत स्वार्थमें तल्लीन हो।
व्यवहार सच्चा कर सदा, मत सिर उठा, मत दीन हो॥
जो स्वार्थ अपना साधता, सो स्वार्थ अपना खोय है।
जो रत रहे पर श्रेय माँहीं, श्रेय उसका होय है॥

(१२५)

तू जानता मैं ही चतुर हूँ, मूर्ख सबको मानता।
धोखे-धड़ी मैं कर सकूँ, नहिं दूसरा कर जानता॥
पण्डित बहुत हैं विश्वमें, धोखा न तुझसे खायँगे।
तेरे वचन-छल दम्भके, पहिचान झट ही जायँगे॥

(१२६)

विश्वेश साक्षी देव सोता है नहीं, नित जागता।
रहता सदा है पास तेरे, सब क्रियाएँ ताकता॥
जो जो करे संकल्प तू, सबको सदा है जानता।
अच्छा बुरा जो तू करे, रहता उसे है सब पता॥

(१२७)

निश्चेष्ट तू सो जाय तब, करता न कोई पाप है।
चिन्ता नहीं ईर्षा नहीं, होता नहीं सन्ताप है॥
जीता रहे तू जब तलक जबतक न कोई पाप कर।
सोते हुए सम कार्य कर, तो जायगा संसार तर॥

(१२८)

कमजोरियाँ छोटी बड़ी सब बीनकर तू छाँट दे।
शाखा न केवल तोड़, उनकी मूलतक भी काट दे॥
मत राग कर, मत द्वेष कर, नीचा गिरायेंगे तुझे।
अभ्यास कर, वैराग्य कर, ऊँचा चढायेंगे तुझे॥

(१२९)

कर्तव्य दिनका, पक्षका हो, मासका या सालका।
कर तू समयपर चित्त दे, क्या आजका, क्या कालका॥
होली दिवाली आदि सब व्यवहार कर तू नियमसे।
उत्साहसे आह्लादसे, मन इन्द्रियोंसे प्रेमसे॥

(१३०)

जा द्वारिकादिक तीर्थ पावन देख सारे स्नान कर।
श्रद्धा तथा विश्वाससे, भोजन-वसनका दान कर॥
कर्तव्य तेरा होय जो, मत चूक उसमें लेश भी।
मत खर्चकी परवाह कर, सह प्रेमसे ले क्लेश भी॥

(१३१)

संकोच मनमें कर नहीं, दे दान मनको खोल कर।
श्रद्धा-विनयसे युक्त होकर स्वस्थ मीठा बोल कर॥
छोटे बड़े चर अचरमें भी देख केवल ईश रे।
कर विश्वमें विश्वेश दर्शन झुक नवाकर शीश रे॥

(१३२)

मन कर्म वाणीसे यहाँ कोई न प्यारे ! पाप कर ।
मत क्रोध कर, मत लोभ कर, मनमें नहीं सन्ताप कर ॥
कर तीर्थ निर्मल चित्तसे, आने न दे मन काम रे ।
जो कामके वश होय है, पाता नहीं सो राम रे ॥

(१३३)

साधू महात्मा सन्तके जा पास प्यारे ! दौड़ कर ।
धर भेंट उनके सामने, सिरको झुका, कर जोड़ कर ॥
जो जो कहें सुन चित्त देकर प्रेम-श्रद्धा-भक्तिसे ।
कर हाथसे या पैरसे सेवा यथावत् शक्तिसे ॥

(१३४)

निष्काम कर सेवा सदा, मनमें न रख कुछ कामना ।
निःस्वार्थ हो निज धर्म कर, मत स्वार्थकी कर भावना ॥
अपनी न इच्छा पूर्ण कर, कर पूर्ण इच्छा सन्तकी ।
जो होय पूजा सन्तकी, सो जान देव अनन्तकी ॥

(१३५)

निःस्वार्थ सच्चा प्रेम ही केवल नहीं पर्याप्त है ।
हो बुद्धि जिसकी सूक्ष्म सो ही पा सके परमार्थ है ॥
हो बुद्धि जिसकी तीक्ष्ण, सो ही सन्तको पहिचानता ।
क्या सत्य और असत्य है, मोहान्ध-मति नहिं जानता ॥

(१३६)

छः शत्रु डाकू हैं महा, बटमार पथमें भक्तिके।
जो शत्रुओंको जीत ले, सो सन्त-सेवा कर सके॥
हो चित्त जिसका शुद्ध सो ही सन्त दर्शन पा सके।
सेवा वही है कर सके, मेवा वही है खा सके॥

(१३७)

सेवा करे जो सन्तकी, सो सत्यको है जानता।
माया तथा मायेश सम्यक् रीतिसे पहिचानता॥
जो पाय सम्यक् ज्ञान सो संसारसे है छूटता।
नहिं शोक हो नहिं मोह हो, आनन्द अक्षय लूटता॥

(१३८)

मत कर कमाई पापकी तू भक्ति देकर आड़में।
बनते भगत ठगते जगत वे पड़त जलते भाड़में॥
व्यापार सच्चा कर सदा, मत छल कपटके पास जा।
करता ठगी जो साधु बनकर अधिक पाता है सजा॥

(१३९)

दिखला न अपने शुभ-गुणन, मत अन्य दोष निहार रे।
मत देख कूड़ा अन्यका, निज भुवन द्वार बुहार रे॥
शुभगुण सभीके कर ग्रहण, कर शुद्ध निज अन्तःकरण।
जो स्वच्छ दर्पण होय सो ही बिम्ब करता है ग्रहण॥

(१४०)

अभ्यास मत कर देहमें, मत मित्रता अभिमानसे ।
अज्ञानको निर्मूल कर तू सत् असत्के ज्ञानसे ॥
मत तामसी तू बन कभी, मत हो कभी तू राजसी ।
सारी क्रिया कर सात्त्विकी, हो स्थूल अथवा मानसी ।

(१४१)

जब सत्त्वगुण बढ़ जायगा, अज्ञान मल धुल जायगा ।
तब द्वार सुखकर मोक्षका, तेरे लिये खुल जायगा ॥
आनन्दका अक्षय खजाना, हाथ तेरे आयगा ।
चिन्ता चितामें नहिं जलेगा, शान्ति अविचल पायगा ॥

(१४२)

नहिं भेद रंचक तत्त्वमें माया किया नानापना ।
आसक्त जिसमें होय तू, होता उसीसे दुख घना ॥
आसक्तिको दे छोड़ फिर मायां न तुझमें लेश है ।
मायेशकी तू ले शरण, उसमें न किंचित क्लेश है ॥

(१४३)

नानापनेको त्याग दे, कर ईशमें अनुराग रे ।
तज भेद मायाका रचा, नित तत्त्वमें जा जाग रे ॥
एकत्वका गोला लगा, माया किलेको तोड़ दे ।
कर दर्श सबमें एकका, भांडा दुईका फोड़ दे ॥

(१४४)

विश्वेशका कर दर्श तू, संग्रामके मैदानमें।
विश्वेशको ही देख तू, वस्ती तथा सुंसानमें॥
विश्वेशको पहिचान तू, बागों तथा शमशानमें।
विश्वेशको ही जान तू स्वर ताल सरगम तानमें॥

(१४५)

जगदीशका कर दर्श, घाटीमें गुफामें शिखरमें।
गंगादि नदियों माँहि, सागरकी उछलती लहरमें॥
वर्षा झड़ीमें मेघमें, विद्युत चपलमें उपलमें।
पीले, हरे, नीले, अरुण, धनु रंगमें नभ धवलमें॥

(१४६)

मायेशका कर दर्श प्यारे, भूखमें अरु प्यासमें।
आशा-निराशा, भय-अभयमें दूरमें अरु पासमें॥
अन्यायमें अरु न्यायमें, सन्तोषमें अरु लोभमें।
चिन्ता-अचिन्ता क्रोधमें, सुख-शान्तिमें अरु क्षोभमें॥

(१४७)

पूर्णेश अनुसन्धान कर, तू जानमें अंजानमें।
वाहन वसन आभूषणोंमें, खानमें अरु पानमें॥
सुर नर मुनिनमें ऋषिनमें, लकड़ी तथा पाषाणमें।
निज श्रेय-हित पर प्रेय-हित, लख ईश तनमें प्राणमें॥

(१४८)

कर यत्न ईश्वर देखनेका सब चराचर विश्वमें ।
सब नाममें सब रूपमें, गुण तीन पाँचों तत्त्वमें ॥
मत भूल तू क्षण एक भी, विभु विश्वव्यापी ईशको ।
परिपूर्ण सबमें एक सर्वातीत सर्वाधीशको ॥

(१४९)

जो वस्तुएँ देखे सभीमें तत्त्वको पहिचान रे ।
तज नाम दे, तज रूप दे, शिव-तत्त्व सच्चा जान रे ॥
जब दृष्टि देगा तत्त्व पर, नहिं अन्य कुछ भी पायगा ।
जब एक ही है ठोस, तो दूजा कहाँसे आयगा ? ॥

(१५०)

कुत्ता जहाँ आवे नजर, कुत्ता उसे मत मान रे ।
दे ध्यान कुत्तेका हटा, कर ईशका ही ध्यान रे ॥
मत देख कुत्ता, गुह्य उसमें ईशको पहिचान रे ।
है नाम मिथ्या, रूप मिथ्या ईश सच्चा जान रे ॥

(१५१)

परमाणु जब देखे कहीं, परमाणु उनको कह नहीं ।
परमाणु संज्ञा भूल जा, शिव दर्श देवेगा वहीं ॥
मत देख तू परमाणुको, परिपूर्णका ही ध्यान कर ।
परिपूर्णका कर लक्ष तू परिपूर्ण अनुसन्धान कर ॥

(१५२)

अद्वय अमर अक्षय अजर, उपमारहित शिव सत्य है।
परिपूर्ण सबमें एकरस निर्गुण निरामय नित्य है॥
है ज्योतिका भी ज्योति वह, सबसे प्रथम है भासता।
करता उजाला विश्वका, रवि, चन्द्र अग्नि प्रकाशता॥

(१५३)

आनन्द अक्षय सिन्धु है, चैतन्यका चैतन्य है।
माया अविद्यासे परे, निर्द्वन्द्व देव अनन्य है॥
कारणरहित, निर्मल परम, भूमा सनातन सर्वपर।
आकाश सम सर्वत्र व्यापक देवका नित ध्यान कर॥

(१५४)

सुर पितृ नर मुनि देहमें, है एक वह ही भर रहा।
उत्पत्ति पालन लय सभीका देव शाश्वत कर रहा॥
सब प्राणियोंके देहमें, घुसकर करे है चिन्तवन।
यज्ञादि करता है वही सुनता वही करता मनन॥

(१५५)

एकत्वपर रख ध्यान तू, नानापनेमें लात दे।
भय त्याग दे होजा अभय, तज क्रोधका तू साथ दे॥
कर प्रेम सबपर कर क्षमा; शम दम तितिक्षा पाल रे।
सच बोल पूरा तोल रे, सब कामनाएँ टाल रे॥

(१५६)

उत्पन्न होता धर्म-अंकुर सत्य रूपी बीजसे।
बढ़ता दया दम दान अरु वैराग्य रूपी सींचसे॥
रहता क्षमामें है सदा, क्रोधाग्निसे जल जाय है।
मत क्रोध आने पास दे, यदि धर्म तुझको भाय है॥

(१५७)

कर धर्मको प्यारे! ग्रहण, मन बुद्धि दोनों रख विमल।
मत भूल क्षण भर भी कभी, भगवत् दयासागर अचल॥
जब चित्त तेरा होय चञ्चल, भाग जावे अन्यमें।
ला खेंचकर मनको लगा दे, चरण देव अनन्यमें॥

(१५८)

मत राग कर तू एकमें, मत द्वेषकर तू अन्यमें।
मत भय किसीसे खा कभी, मन बुद्धि रख चैतन्यमें॥
जो इष्ट तेरा है कभी आता नहीं संसारमें।
सर्वत्र ही भरपूर है, क्या वारमें क्या पारमें॥

(१५९)

सर्वत्र उसको देख तू, सबमें उसीको जान रे।
समदृष्टि सबमें रक्ख, मत दूजा किसीको मान रे॥
धो डाल सारे दोष, कूड़ा चित्तका सब दे बहा।
हो शुद्ध प्यारे! शान्त हो, यह धर्म उत्तम है महा॥

(१६०)

ऐसे निरन्तर यत्नमें प्यारे ! जभी लग जायगा।
कुछ कालके अभ्याससे, अभिमान सब गल जायगा॥
तब चित्त तेरा शुद्ध गंगा नीर सम हो जायगा।
अद्वैतता एकत्व तू, सब वस्तुओंमें पायगा॥

(१६१)

होगा उदय विज्ञान रवि, तम मोह सम भग जायगा।
'मैं हूँ वहीं नहिं दूसरा' तू जानने लग जायगा॥
अभ्यास कर फिर योगका, वैराग्य निर्मल पायगा।
वादी सभी छँट जायगी; तू शुद्ध ही रह जायगा॥

(१६२)

कर योग कुछ दिन और योगाभ्यास जब बढ़ जायगा।
हो पूर्ण पक्क विवेक तब वैराग्य दृढ़ता पायगा॥
ज्यों ज्यों घटेगा राग ज्यों ज्यों द्वेष घटता जायगा।
त्यों त्यों अमल निश्चल चमकता चित्त होता जायगा॥

(१६३)

माया-नटीके पेच सब पहिचान तब तू जायगा।
शृंगार कैसे ही करे, धोखा नहीं तू खायगा॥
सम-चित्त हो व्यवहार कर, निर्द्वन्द्व तू हो जायगा।
श्रद्धा अमलमें जागकर संसारसे सो जायगा॥

(१६४)

संसार जलती आग है, इस आगमें अब तू न जल।
कर यत्न इससे छूटनेका, दूर इससे जा निकल॥
कर खोज सच्ची शान्तिका, चिन्ताग्निमें मत तात! बल।
सद्गुरु सुहृद्की खोज कर, भय शोक चिन्ता जाय टल॥

(१६५)

सद्गुरु सुहृद् मिल जाय जब ले तू उसीकी तब शरण।
विश्वास उसपर पूर्ण कर, ले पकड़ सद्गुरुके चरण॥
माया-नटीसे मुक्त सद्गुरु ही करे तारण-तरण।
सब भाँतिसे हो जा शरण, होगा न तेरा फिर मरण॥

(१६६)

सद्गुरु सुहृद् करुणाभवनके पदकमल कर तू ग्रहण।
दे देह अपना सौंप गुरुको, अर्प दे अन्तःकरण॥
नाता उसीसे जोड़ वह ही एक है चिन्ता-हरण।
सेवा उसीकी कर सदा, केवल उसीको कर नमन॥

(१६७)

अभिमान तजके भज उसे, तू प्रेमसे अरु भक्तिसे।
जो जो कहे शिर धार ले, विश्वाससे अनुरक्तिसे॥
सन्तोष मनमें रख सदा, निर्मल विनय संतृप्तिसे।
जो होयँ शंका दूर कर सब, शास्त्रसे अरु युक्तिसे॥

(१६८)

संसारभरमें मात्र तेरा एक सद्गुरु मित्र है।
सब बन्धु जगमें बाँधते करता वही निजतन्त्र है॥
नव जन्म तेरा है हुआ, सब बन्धनोंको तोड़ दे।
नूतन भवनमें वास कर, अब घर पुराना छोड़ दे॥

(१६९)

कोई नहीं तेरा यहाँ, अपना पराया छोड़ दे।
सम्बन्ध-बन्धन काट दे, नाता जगत्‌का तोड़ दे॥
आसक्ति अब मत कर किसीमें, विश्वसे मुख मोड़ दे।
संकल्प तक भी त्याग दे, भांडा दुईका फोड़ दे॥

(१७०)

सम्पन्न चारों साधनोंसे, मोक्ष-पथपर चाल रे।
भिक्षाचरणकी वृत्ति ले अब त्याग जग-जंजाल रे॥
बन भिक्षु सच्चा, भिक्षुओंका धर्म सम्यक् पाल रे।
निस्संग होकर विचर जग-सम्बन्ध सारे टाल रे॥

(१७१)

जीवन नयेका धर्म सम्यक् सीख निज आचार्यसे।
कर्तव्य अपना पूर्ण कर, मत चूक अपने कार्यसे॥
संसार दारुण रोग है, हो मुक्त इस संसारसे।
मन कर्म वाणी शुद्ध हो, मत भ्रष्ट हो आचारसे॥

(१७२)

श्रोत्रादि सारी इन्द्रियाँ, शब्दादि विषयोंसे हटा।
इस लोकका परलोकका भी, ध्यान मनसे दे मिटा॥
निज देहको जा भूल तू, संकल्प सारे दे भगा।
संकल्पसे कर शून्य मन, चैतन्यमें मन दे लगा॥

(१७३)

लग ध्यानमें चैतन्यके, भीतर घुसा ही जा चला।
एकाग्र करके चित्तको चैतन्यघनमें दे मिला॥
चैतन्यघन निज आत्मका दर्शन तुझे हो जायगा।
सद्ब्रह्म-विद्या प्राप्त करके पूर्ण सुख तू पायगा॥

(१७४)

एकान्तमें तू बैठ कर निज आत्म अनुसन्धान कर।
कर ध्यान अपने आपका, मत दूसरेका ध्यान कर॥
सन्तुष्ट अपने आपमें हो, आपको सन्मान कर।
हो तृप्त अपने आपमें ही विश्व मिथ्या जानकर॥

(१७५)

रह तू अकेला एक ही, मत दूसरेका साथ कर।
घर या कुटीमें रह नहीं, सर्वत्र इकला ही विचर॥
पालन तितिक्षा कर सदा, शीतोष्ण सुख दुख सहन कर।
मत कर भरोसा दूसरेका, फिर अकेला हो निडर॥

(१७६)

साथी न कोई ढूँढ़ रे, सामान मत रख पास रे।
सोना न छू, चाँदी न ले, मत कर किसीकी आस रे॥
रह शान्त मन निश्चल सदा मत लक्ष्य अपना त्याग रे।
माया नटीके खेलमें, मत लेश कर अनुराग रे॥

(१७७)

माया महा है मोहनी, फँस तू न माया-जालमें।
सुन्दर यहाँ पर कुछ नहीं काला पड़ा है दालमें॥
हैं वस्तुएँ सब मोहनी, ज्यों सर्प कोमल घासमें।
तू प्राण उनसे ले बचा, फँस जा न उनके पाशमें॥

(१७८)

ज्यों सर्पसे सब भागते, रह दूर राक्षस कामसे।
है काम तुझमें जब तलक, नहिं भेंट होगी रामसे॥
नहिं शान्ति तुझको हो कभी, सोवे न तू आरामसे।
नहिं सिद्धि हो संन्यास सो, नहिं योग आत्मारामसे॥

(१७९)

हों गेरुए कपड़े रँगे, होवे कमण्डलु हाथमें।
लम्बी शिखा उपवीत पावन हो तिलक भी माथमें॥
यदि कामवश हो जाय तू कोई न आवें काममें।
मत कामके वश हो कभी, कर प्रेम आत्माराममें॥

(१८०)

माया-नटीके चक्रमें हे तात ! मत तू आ कभी ।
जितनी जगत्की वस्तुएँ हैं त्याग दे प्यारे ! सभी ॥
दे त्याग प्यारे ! दूरसे उस देहका सम्बन्ध भी ।
निर्भय विचर संसारमें, साम्राज्य पावेगा तभी ॥

(१८१)

मत मांस-हड्डी-चामके इस देहमें आसक्त हो ।
कामी न बन, लोभी न हो, मत भूल विषयासक्त हो ॥
आलस्यके वश हो नहीं, ज्ञानी अमानी धीर हो ।
धर्मज्ञ हो तत्त्वज्ञ हो, योगी विरागी वीर हो ॥

(१८२)

माधूकरी आहार कर, एकान्नका कर त्याग दे ।
भोजन सलोने चटपटे, मिष्टान्नमें तज राग दे ॥
रूखा मिले सूखा मिले, जैसा मिले मत ध्यान दे ।
भगवत्-प्रसादी जानकर, आहार कर सन्मान दे ॥

(१८३)

दिनरातमें इक बार ही, भिक्षार्थ पुरमें कर गमन ।
मत तंगकर संसारियोंको, इन्द्रियोंका कर दमन ॥
जो आपसे ही दें तुझे, केवल उसे ही कर ग्रहण ।
भोजन अधिक मत माँग रे, मत दीन हो मत कर नमन ॥

(१८४)

पर्याप्त भोजन जाय मिल, खाकर उसीको गुजर कर।
भोजन सिवा मत दूसरा, कोई पदारथ ग्रहण कर॥
पर्याप्त भोजन नहिं मिले, मनमें न कुछ उद्वेग कर।
रख शान्ति मनमें स्वस्थ रह, निन्दा न कर सुखसे विचर॥

(१८५)

सन्तुष्ट रह तू सर्वदा, निर्द्वन्द्व हो तू सर्वथा।
निर्वाह कर निज देहका, आहार कर औषधि यथा॥
भोजन समय सुख हो किधर, यह प्रश्न तेरा है वृथा।
सर्वत्र ही एकत्व है, फिर भेदकी है क्या कथा॥

(१८६)

भिक्षार्थ केवल जा नगर, दूजे समय मत जा कहीं।
संसारियोंका संग करना, योग्य तुझको है नहीं॥
एकान्तमें नित वासकर, ईश्वर-भजनमें लग सदा।
वैराग्यसे संयुक्त हो, कर ब्रह्म-चिंतन सर्वदा॥

(१८७)

माँगे विना जो भेंट लाकर दे तुझे कोई गृही।
यदि हो अपेक्षा, कर ग्रहण, रह तू सदा ही निस्पृही॥
जितनी बढ़ेंगी वस्तुएँ, उतना बढ़ेगा दुःख भी।
जितना करेगा त्याग, उतना ही रहेगा स्व-स्थ भी॥

(१८८)

संग्रह अधिक अच्छा नहीं, यह मोक्ष-पथमें आड़ है।
कैसे भला तू भग सके, सिर पर लदा जब भार है॥
कलके लिये एकत्र करना, मूर्खताका काम है।
व्रेदाम चिन्ता मोल ले, पंडित न उसका नाम है॥

(१८९)

वैराग्यके रह साथ तू, वैराग्य रक्षक तात है।
निर्वाह कर नित मधुकरी पर, मधुकरी ही मात है॥
श्रद्धा प्रिया पत्नी चतुर, विज्ञान तेरा पुत्र है।
प्यारी सुता हरि-भक्ति है, सन्तोष तव सन्मित्र है॥

(१९०)

सन्ताचरण परिपाल, सन्तों मध्य तू आदर्श हो।
पावन परम निर्दोष रह. नाहिं पापसे संस्पर्श हो॥
विद्या उजाला भक्त हो, विज्ञान पूर्ण प्रकाश हो।
दीखें यथावत् वस्तु सब, अज्ञान-तमका नाश हो॥

(१९१)

कम कर न अपनी शुद्धता, कर प्राप्त पूरी शुद्धता।
रह बाह्य—भीतर एकसा, कर शौचकी परिपूर्णता॥
ज्यों सूर्य हो तू तेजमय, शीतल हृदय ज्यों चन्द्रमा।
जैसे स्फटिक हो स्वच्छतम, रंचक न रहवे कालिमा॥

(१६२)

ज्यों सिन्धु अति गंभीर हो, गिरि सम परम मतिधीर हो ।
धारण क्षमा कर ज्यों क्षमा, मत भीरु हो, न अधीर हो ॥
भण्डार अक्षयका कभी नहिं ध्यान मनसे दूर हो ।
कर ध्यान उसका सर्वदा, आनन्दसे भरपूर हो ॥

(१६३)

हर क्षण यही रख ध्यान, आगे योगमें तू बढ़ रहा ।
अभ्यास अरु वैराग्यमें है यत्न पूरा कर रहा ॥
जो कार्य तू है कर रहा, सब ही यथावत् कर रहा ।
व्यवहार सच्चा कर रहा नहिं सत्यसे है गिर रहा ॥

(१६४)

मत काल अपना खो वृथा ही, खानमें या पानमें ।
सब झञ्झटोंसे दूर रह, मत जा कभी व्याख्यानमें ॥
मत आ कभी तू क्रोधमें, मत भर कभी तू जोशमें ।
मत लक्ष्य अपना त्याग तू, रह सर्वदा ही होशमें ॥

(१६५)

मत जोरसे तू हँस कभी, निन्दा बुराई छोड़ दे ।
ठट्ठा-हँसी मत कर कभी, झगड़ा-लड़ाई छोड़ दे ॥
मत मार्ग खोटे चल कभी, बे-अर्थ फिरना छोड़ दे ।
मत पंच बन, मत चौधरी, अन्याय करना छोड़ दे ॥

(१६६)

सीधा चला जा, इधरको या उधरको मत ताक रे।
खबरें वृथा मत पूछ, गप्पें भी वृथा मत हाँक रे॥
मत दोष देखे अन्यके, मत कीर्ति अपनी भाख रे।
रह मग्न अपने आपमें, रस आत्मका ही चाख रे॥

(१६७)

जो कार्य करना उचित है, सो कार्य ही कर सर्वदा।
अनुचित न कर कुछ कार्य, हो शास्त्रानुकारी ही सदा॥
मत जा किसीके पास तू, बतला न कुछ अपना पता।
सद्गुरु सिवा मत अन्यसे कर मैत्र अथवा मित्रता॥

(१६८)

कर वाद सद्गुरुसे सदा, परमार्थमें कर प्रश्न रे।
परमार्थका कह वचन तू, परमार्थका कर श्रवण रे॥
शिव-तत्त्वका कर चिन्तवन, शिव-तत्त्वका धर ध्यान रे।
पूजा न जडकी कर कभी, कर आत्म-अनुसन्धान रे॥

(१६६)

जिसकी अपेक्षा हो नहीं, सो वस्तु तू मत कर ग्रहण।
जिसके बिना तू रह सके, लेकर न कर तू दुख सहन॥
संशय न इसमें लेश है, हो त्यागसे यदि शान्त मन।
चीजें बहुत तू त्याग सक्ता, रख सके है प्राण तन॥

(२००)

संसारकी यदि वस्तुओंमें चित्त तेरा जायगा ।
तो चित्त चञ्चल होय, परदा बुद्धिमें पड़ जायगा ॥
रखते हुए भी आँख तू, बे-आँखका बन जायगा ।
सर्वत्र व्यापक ईश भी, नहिं देखने तू पायगा ॥

(२०१)

संसारकी सब वस्तुएँ, तेरे लिये जंजीर हैं ।
तेरे हृदयको छेदने पैने भयंकर तीर हैं ॥
सब इन्द्रियाँ हैं बहिर्मुख मन भी नहीं स्वाधीन है ।
सो शान्ति अक्षय पाय कैसे जो दुखी है दीन है ? ॥

(२०२)

दर्शन करा निज आँखको, सुख-शान्तिके भण्डारका ।
मनसे सदा ही कर मनन, उस सारके भी सारका ॥
होजा सभीमें पूर्ण, कर तू ध्यान देव अनन्यका ।
सच्चित् परम आनन्दघन, परिपूर्ण एक अजन्यका ॥

(२०३)

शिवको कभी मत भूल तू, सोता हुआ या जागता ।
धर ध्यान भगवत्का सदा, बैठा हुआ या भागता ॥
मन इन्द्रियाँ स्वाधीन रख, मत मान तू उनका कहा ।
उनका कहा जो मानता, भवसिन्धुमें फिरता बहा ॥

(२०४)

साधक ! न इसको भूल तू, तेरा नहीं यह देह है।
धन धाम भी तेरा नहीं, तेरा नहीं यह गेह है॥
फँस तू न माया-जालमें, तू दिव्यसे भी दिव्य है।
मत बन्द काया मांहि हो, तेरा न यह कर्तव्य है॥

(२०५)

साधक सदा रह शुद्ध तू, मैला न हो भव-मैलसे।
पावन परमका ध्यान कर, बाहर निकल जग-जेलसे॥
निग्रह सदा कर चित्तको, बच तू विषय-विष-बेलसे।
क्रीड़ा किया कर आत्ममें, रह दूर सारे खेलसे॥

(२०६)

हो लाभ अथवा हानि हो, सुख-दुःख या शीतोष्ण हो।
रख चित्त अपना शान्त, मत तू स्वप्नमें भी खिन्न हो॥
निन्दा प्रशंसा हो भले ही मान या अपमान हो।
रह तू सदा ही एक-सा बस्ती भले सुंसान हो॥

(२०७)

मत हानिकी परवाह कर, तेरा नहीं कुछ खोय है।
मत लाभपर ही ध्यान दे, नहिं लाभ तुझको होय है॥
तेरी प्रशंसा होय तो, तेरा न कुछ बढ़ जाय है।
निन्दा न तुझ तक पहुँचती, क्यों व्यर्थ ही दुख पाय है?॥

(२०८)

आनन्दघन है आत्म तू, तिहुँकालमें निजतन्त्र है।
सम्बन्ध तुझमें है नहीं, होता न तू परतन्त्र है॥
भूमा अचल सबसे परम, मरता नहीं है नित्य है।
तेरे सिवा सब है मृषा, तू एक केवल सत्य है॥

(२०९)

निन्दा प्रशंसा कुछ नहीं, नहिं मान या अपमान है।
ऊँचा तथा नीचा नहीं, सब कल्पना अज्ञान है॥
माया अविद्याका रचा, संसार केवल नाम है।
है तत्त्व इसमें कुछ नहीं, तू तत्त्व ही सुखधाम है॥

(२१०)

संसार है धोखाधड़ी, सब कल्पनामें है खड़ा।
अज्ञानसे है दीखता, खोटा खरा छोटा बड़ा॥
'मैं' और 'मेरा' है मृषा, 'तू' और 'तेरा' कल्पना।
अपना पराया भूल जा, निर्मूल कर दे 'मैं'पना॥

(२११)

'सोहं' तुही सबसे बड़ा है, आप ही तू ब्रह्म है।
भूमा तुही है एकरस, तुझमें मरण नहिं जन्म है॥
कारण बिना तू है अजन्मा, कालका भी काल है।
निर्दोष है, निःशोक है, स्वच्छन्द मालामाल है॥

(२१२)

हा शोक ! हा हा शोक ! माया जालमें तू फँस गया ।
जगका खिलौना बन गया, परदेशमें है बस गया ॥
आत्मा सदा है एक-सा तू भूल अपनेको गया ।
माया मरीको मार दे, फिर तू अमर है नित नया ॥

(२१३)

चौरासिका चौसर बिछा, माया तुझे है छल लिया ।
स्वाराज्य तेरा छीन तुझको डाल बन्धनमें दिया ॥
माया नटीको जीत ले, मत दास बन तू आस का ।
वैराग्यका घर दाँव, पासा फैंक तू अभ्यासका ॥

(२१४)

मन है प्रमादी अति बली, चालें बहुत-सी जानता ।
वोही उसे बस कर सके, जो युक्तियाँ पहिचानता ॥
मनको प्रथम स्वाधीन कर, यदि मुक्त होना चाहता ।
मनको बिना बशमें किये, नहिं सिद्धि कोई पावता ॥

(२१५)

वैराग्य बख्तर गात्रमें, विद्या खड्ग ले हाथमें ।
झण्डा प्रणव, श्रद्धा ध्वजा, सामग्रि पूरी साथमें ॥
आनन्दपुरके जीतनेको, कर यहाँसे कूच रे ।
उत्साहसे बढ़ता चला जा, कर न कुछ संकोच रे ॥

(२१६)

निःशंक होकर कूच कर, मत मार्गमें तू रुक कहीं ।
कर तू निरन्तर यम नियम, पीछे कभी भी हट नहीं ॥
निर्भय सदा कर योग तू, निज लक्ष्यको मत तज कभी ।
घबरा नहीं जो विघ्न आवें, सहन कर ले तू सभी ॥

(२१७)

पीछे न हट सन्मार्गसे, लग तू निरन्तर योगमें ।
निग्रह सदा कर चित्त, मत जाने उसे दे भोगमें ॥
संयम सदा कर नियमसे, कर बुद्धिको एकाग्र रे ।
विक्षेप कुछ आने न दे, शम शान्ति समता धार रे ॥

(२१८)

जब योगके अभ्याससे, तब चित्त थिर हो जायगा ।
होगी समाधी सिद्ध तब तू बोध सम्यक् पायगा ॥
माया-नटी भग जाय, संशय दूर सब हो जायगा ।
अल्पज्ञ तब तू जीव ही, सर्वज्ञ शिव हो जायगा ॥

(२१९)

करता निरन्तर युद्ध रह, जबतक न तेरी हो विजय ।
संग्राम कर तू अन्ततक, जबतक न पूरा हो अभय ॥
विश्वास रख तू आप पर, सन्तुष्ट रह, कर प्राप्त जय ।
विश्वास रख गुरु शास्त्रमें, स्वच्छन्द है तू बोधमय ॥

(२२०)

कर प्रार्थना गुरुदेवसे, स्वामिन् अनुग्रह कीजिये।
माया अविद्या दूर कीजै, शान्ति सम्यक् दीजिये॥
भवसिन्धुमें हूँ डूबता, गोते न खाने दीजिये।
है नाव मेरी डूबती, भव पार उसको कीजिये॥

(२२१)

हे देव! बन्धनमें पड़ा हूँ, मुक्त मुझको कीजिये।
निर्भय मुझे कर दीजिये, सुख शान्ति अविचल दीजिये॥
विद्या मुझे प्रभु! दीजिये, अज्ञान-तम हर लीजिये।
करता विनय हूँ आप सम्यक् ज्ञान मुझको दीजिये॥

(२२२)

ऐसी कृपा प्रभु! कीजिये, परतन्त्रतासे मुक्त हूँ।
होऊँ अजन्मा अमर मैं, सुख शान्तिसे संयुक्त हूँ॥
मैं आपके ही हूँ शरण, करुणा दयानिधि कीजिये।
मन कर्म वाणीसे शरण हूँ, सीख सच्ची दीजिये॥

(२२३)

मैं आपका हूँ, आपके ही आ पड़ा हूँ अब शरण।
करता नमन हूँ, फिर नमन, बहु बार करता हूँ नमन।
वह मार्ग प्रभु! दिखलाइये, जिससे न होवे फिर मरण।
परिपूर्ण हूँ, स्वच्छन्द हूँ, निश्चिन्त हूँ, धारूँ न तन॥

(२२४)

संसारसे जाऊँ निकल, ऐसी दया अब कीजिये।
मनके अँधेरेको जरा भी, अब न रहने दीजिये॥
उपदेश सच्चा दीजिये, सब मर्म बतला दीजिये।
मर्मज्ञ प्रभु ! कर दीजिये, संशय सभी हर लीजिये॥'

(२२५)

सद्‌गुरु दयानिधि तब तुझे, उपदेश सच्चा देयँगे।
अज्ञान तेरा दूर करके, सत्य बतला देयँगे॥
सत् तत्त्व चारों वेदका, अपरोक्ष सिखला देयँगे।
प्रत्यक्ष बतला देयँगे, सुस्पष्ट दिखला देयँगे॥

(२२६)

परमार्थ पावन सत्यका, उपदेश सुन तू कान दे।
विश्वास श्रद्धाभक्तिसे, आह्लादसे तू ध्यान दे॥
एकाग्र मनसे कर ग्रहण, उपदेश बुद्धि कुशाग्रसे।
अति सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म अति पहिचान शुद्ध विचारसे॥

(२२७)

जो सूक्ष्मदर्शी होय सो ही तत्त्व है पहिचानता।
श्रद्धा जिसे है वेदपर, सो मर्म केवल जानता॥
हो बुद्धि जिसकी तीव्र, संशय दूर जो कर डालता।
'हो बुद्धि जिसकी शुद्ध सो ही बोध सम्यक् जानता॥

(२२८)

वैराग्य और विचारसे, निज बोधको परिपूर्ण कर।
सद्वस्तुका आदर सहित, दिन-रात अनुसंधान कर॥
जो कुछ श्रवण गुरुसे किया, एकाग्र मनसे मनन कर।
करता मनन रह तब तलक, जब तक न होवे पकतर॥

(२२९)

जब पक्क हो जावे मनन, कर स्वयं अनुभव तत्त्वका।
कर ध्यान बारंबार, सच्चा मार्ग यह ही सत्यका॥
बिनु ध्यानके नहिं तत्त्व तेरे हाथ सम्यक् आयगा।
होगा निरन्तर ध्यान तब ही, बोध सम्यक् पायगा॥

(२३०)

कुटिया बना एकान्तमें, अभ्यास करनेके लिये।
जो योगके हित युक्त हो, अरु युक्त तन मनके लिये॥
रख शेष केवल ब्रह्म, सारे दृश्यका तू त्याग कर।
हो स्वस्थ कुटिया माँहि केवल ब्रह्ममें अनुराग कर॥

(२३१)

रख शेष केवल ब्रह्म, सारे विश्वका कर बाध दे।
निज चित्तको चैतन्यका ही, मात्र चखने स्वाद दे॥
नानापनेको त्याग कर, एकत्वता ही साध रे।
कर योगका अभ्यास, मत कर अन्य कुछ भी याद रे॥

(२३२)

सबमें निरन्तर भाव कर, तू सर्वदा एकत्वका।
निःसीमका चैतन्यका, अव्यय निरामय तत्त्वका ॥
मनमें तथा ही कर्ममें, कर लक्ष अक्षय एकता।
अद्वैतता दृढ़ कर सदा, निर्मूल कर दे द्वैतता ॥

(२३३)

'मैं ब्रह्म शाश्वत मुक्त सन्तत शुद्ध हूँ निज तन्त्र हूँ।
सबमें भरा हूँ एकरस, परिपूर्ण मैं सर्वत्र हूँ ॥
अव्यय तथा निर्दोष, मायासे परे हूँ, सत्य हूँ।
कारण रहित, सीमा रहित, केवल, अजन्मा नित्य हूँ ॥

(२३४)

मैं ब्रह्म हूँ, परमात्म हूँ, मैं वार हूँ मैं पार हूँ।
मैं हूँ स्वयं ही सिद्ध, चिन्मय सारका भी सार हूँ ॥
मेरे सिवा कुछ है नहीं, मैं सर्वका आधार हूँ।
अज हूँ, अजर हूँ, अमर हूँ, सन्मात्र हूँ, चिन्मात्र हूँ ॥

(२३५)

ऐसे सदा कर चिन्तवन, तू योगमें आरूढ हो।
निग्रह किया कर चित्तको, जब तक न ज्ञानारूढ हो ॥
लय चित्त कर चिन्मात्रमें, सन्मात्रमें तल्लीन हो।
मत भेद किञ्चित् देख तू, एकत्व जलकी मीन हो ॥

(२३६)

ले मदद प्रत्याहारकी, मन रोक वश कर इन्द्रियाँ।
एकत्व लख सर्वत्र ही, जावें जहाँ मन वृत्तियाँ॥
मत ध्यानको दे टूटने, एकत्र कर सब वृत्तियाँ।
एकत्वसे कर पूर्ण मन, कर्मेन्द्रियाँ ज्ञानेन्द्रियाँ॥

(२३७)

एकत्वमें मन चित्तकी, सब वृत्तियोंको जोड़ दे।
निष्क्रिय हो निःसंग, नाता इन्द्रियोंसे तोड़ दे॥
आनन्दमय तब ब्रह्मविद्या दर्श अपना देयगी।
चिन्मय समाधी माँहिं चिन्मय ही तुझे कर लेयगी॥

(२३८)

कर तू, समाधी दिवस निशि आदर सहित सत्कारसे।
मन कर्म वाणीसे तथा चिरकाल तक अति प्यारसे॥
निर्मूल कर दे विघ्न सारे, तात! सर्वप्रकारसे।
कर योग सच्चा प्राप्त हो जा, दूर इस संसारसे॥

(२३९)

करता समाधी रह सदा, अति सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म तू।
करके समाधी सिद्ध चढ़ जा ऊर्ध्वसे भी ऊर्ध्व तू॥
भूमा अचलमें वास कर, भूमा स्वयं ही ब्रह्म हो।
कूटस्थ व्यापी सर्वमें, चैतन्य हो परमात्म हो॥

(२४०)

है ब्रह्म तू ही शान्तिमय, चिन्मय तथा भरपूर है।
सबका प्रकाशक सर्वमय, नहिं पास है नहिं दूर है॥
अविनाशि तीनों कालमें, निर्मोह है निःशोक है।
माया अँधेरेसे परे, तिहुँ लोकका आलोक है॥

(२४१)

है शुद्ध नित्य प्रबुद्ध तू, तीनों अवस्थासे परे।
शिव एक तुर्यातीत, भवसे मुक्त मायासे परे॥
परसे परे सद्ब्रह्म अक्षय शान्त है निर्बन्ध है।
तीनों गुणोंसे है परे, सन्तृप्त है, निर्द्वन्द्व है॥

(२४२)

चेतन अचेतन से परे, केवल परम अद्वैत है।
है नित्यका भी नित्य तू शिव एक निरुपम सत्य है॥
ओंकार, सर्वाधार, मायापार, सर्वातीत है।
आत्मा प्रत्यक्, तत्सत् तथा चिन्मात्र मायातीत है॥

(२४३)

श्रुति मातुकी वाणी विमल, सुनकर मुमुक्षू जग गया।
संसारको मिथ्या समझकर योगमें सो लग गया॥
चिरकालतक अभ्यास करके तत्त्व अपना पायके।
अनुभव स्वयं कहने लगा, इस भाँतिसे चिल्लायके॥

(२४४)

नहिं हाड़ हूँ नहिं मांस हूँ, मज्जा नहीं, नहिं रक्त हूँ।
नहिं मेद हूँ, नहिं नाड़ियाँ, नहिं वात हूँ नहिं पित्त हूँ॥
मैं देह नहिं तिहुँ कालमें, मेरा नहीं यह देह है।
'मैं ब्रह्म हूँ,' 'मैं ब्रह्म हूँ.' इसमें नहीं सन्देह है॥

(२४५)

श्रोता नहीं, नहिं श्रोत्र ही, मैं हूँ नहीं श्रोतव्य भी।
छूता नहीं, नहिं हूँ त्वचा, मैं हूँ न छूने योग्य भी॥
द्रष्टा नहीं, नहिं चक्षु मैं, मुझमें न रञ्चक दृश्य है।
'मैं ब्रह्म हूँ,' 'मैं ब्रह्म हूँ.' यह बात सम्यक् सत्य है॥

(२४६)

चखता नहीं, नहिं, जीभ मैं, मुझमें नहीं है स्वाद भी।
नहिं सूँघता, नहिं ना कहूँ, नहिं गन्ध मुझमें गन्ध की॥
वक्ता न मैं, वाणी न मैं, मुझमें नहीं वक्तव्य है।
'मैं ब्रह्म हूँ,' 'मैं ब्रह्म हूँ,' यह वाक्य ही मन्तव्य है॥

(२४७)

पकड़ूँ नहीं, नहिं हाथ मैं, मुझको न कुछ भी ग्राह्य है।
चलता न मैं, नहिं पैर हूँ, मेरी न कोई राह है॥
नहिं मोद लूँ, न उपस्थ हूँ, मुझमें नहीं आनन्द है।
'मैं ब्रह्म हूँ,' 'मैं ब्रह्म हूँ,' कहता यही श्रुति छन्द है॥

(२४८)

त्यागूँ नहीं, नहिं पाउ मैं, कुछ भी न मुझको त्याज्य है ।
त्यागूँ किसे पकड़ूँ किसे, सर्वत्र मेरा राज्य है ॥
नहिं प्राण हूँ, न अपान हूँ, नहिं व्यान उदान समान हूँ ।
'मैं ब्रह्म हूँ,' 'मैं ब्रह्म हूँ,' मैं प्राणका भी प्राण हूँ ॥

(२४९)

मन्ता नहीं हूँ, मन नहीं, मुझको न कुछ मन्तव्य है ।
बोद्धा नहीं, नहिं बुद्धि मैं, मुझको न कुछ बोद्धव्य है ॥
चेत्ता नहीं, नहिं चित्त मैं, मुझको न कुछ चिन्तव्य है ।
'मैं ब्रह्म हूँ,' 'मैं ब्रह्म हूँ,' मेरा न कुछ कर्तव्य है ॥

(२५०)

ध्याता नहीं, नहिं ध्यान मैं, मेरा न कोई ध्येय है ।
ज्ञाता नहीं, नहिं ज्ञान ही, मुझको न कोई ज्ञेय है ॥
माता नहीं, नहिं मान ही, मुझमें न किञ्चित् मेय है ।
'मैं ब्रह्म हूँ,' मैं ब्रह्म हूँ,' मैं ब्रह्म हूँ,' यह श्रेय है ॥

(२५१)

ब्राह्मण न मेरा वर्ण है, षट्-कर्म भी मैं ना करूँ ।
क्षत्रिय नहीं जो दण्ड दूँ, या युद्धमें जाकर लड़ूँ ॥
मैं वैश्य व्यापारी नहीं, नहिं शूद्र, मैं मजदूर हूँ ।
'मैं ब्रह्म हूँ', 'मैं ब्रह्म हूँ', सर्वत्र ही भरपूर हूँ ॥

(२५२)

मैं ब्रह्मचारी हूँ नहीं, जो पाठ वेदोंका करूँ।
मैं नहिं गृही जो घर बसाऊँ या अतिथि-सेवा करूँ॥
नहिं हूँ वनी जो तप करूँ, नहिं मैं यती जो दूँ अभय।
'मैं ब्रह्म हूँ', 'मैं ब्रह्म हूँ', सच्चित् तथा आनन्दमय॥

(२५३)

'मैं देह हूँ' संकल्प यह अन्तःकरण जावे कहा।
'मैं देह हूँ' संकल्प यह संसार कहलाता महा॥
'मैं देह हूँ' संकल्प यह ही बन्ध कहलावे यहाँ।
'मैं ब्रह्म हूँ' 'मैं ब्रह्म हूँ', यह देह मुझमें है कहाँ॥

(२५४)

'मैं देह हूँ' संकल्प ऐसा, दुःख सो कहलाय है।
'मैं देह हूँ, संकल्प यह ही नरक माना जाय है॥
'मैं देह हूँ' संकल्प यह ही जगत् है कहलावता।
'मैं ब्रह्म हूँ', 'मैं ब्रह्म हूँ', इस देहसे नहिं वासता॥

(२५५)

'मैं देह हूँ' यह ज्ञान चिज्जड़-ग्रन्थि मानी जाय है।
'मैं देह हूँ' यह जानना, अज्ञान सो कहलाय है॥
'मैं देह हूँ' यह ज्ञान ही कहलाय है नास्तिकपना।
'मैं ब्रह्म हूँ', 'मैं ब्रह्म हूँ', मुझमें नहीं है मैंपना॥

(२५६)

'मैं देह हूँ', इस बुद्धिका ही तो अविद्या नाम है।
'मैं देह हूँ', इस बुद्धिमें ही द्वैत अरु परिणाम है॥
'मैं देह हूँ', इस बुद्धिवाला, जीव संज्ञा पावता।
'मैं ब्रह्म हूँ', 'मैं ब्रह्म हूँ', नहिं देहका मुझमें पता॥

(२५७)

'मैं देह हूँ' इस भानसे ही भासती है अल्पता।
'मैं देह हूँ' इस भानमें कल्पी हुई सर्वज्ञता॥
'मैं देह हूँ' इस भानमें, रहती सदा है अस्मिता।
'मैं ब्रह्म हूँ', 'मैं ब्रह्म हूँ', मुझमें नहीं है अल्पता॥

(२५८)

'मैं देह हूँ' संकल्प यह सब पातकोंका मूल है।
'मैं देह हूँ' संकल्प यह ही तो भयानक शूल है॥
'मैं देह हूँ' संकल्प यह, सब व्याधियोंका पुंज है।
'मैं ब्रह्म हूँ', 'मैं ब्रह्म हूँ', मुझमें न कोई रंज है॥

(२५९)

'मैं देह हूँ' यह मानना सबसे बड़ा यह पाप है।
निष्पापको पापी बना, देता महा सन्ताप है॥
सब-पाप इसके पुत्र हैं, सब पापका यह बाप है।
'मैं ब्रह्म हूँ', 'मैं ब्रह्म हूँ' यह जाप उत्तम जाप है॥

(२६०)

'मैं देह हूँ' यह मानते ही आ दबाता काम है।
निष्कामको कामी बनाता, छीन ले आराम है॥
मर्कट बने नर कामवश, पाता नहीं विश्राम है।
'मैं ब्रह्म हूँ', 'मैं ब्रह्म हूँ' यह मन्त्र सुखका धाम है॥

(२६१)

'मैं देह हूँ' यह माननेसे, शिर चढ़े आ क्रोध है।
गुरु-शास्त्र सबको भूलकर हो जाय नर निर्बोध है॥
मैं कौन हूँ? क्या कर रहा, रहता न कुछ भी बोध है।
'मैं ब्रह्म हूँ', 'मैं ब्रह्म हूँ' करता यही निज शोध है॥

(२६२)

'मैं देह हूँ' यह माननेसे लोभ लेता दाव है।
पण्डित, गुणी, शास्त्रज्ञकी भी खोय देता आब है॥
वश लोभके हो सूझता भी, होय जाता अन्ध है।
'मैं ब्रह्म हूँ', 'मैं ब्रह्म हूँ, यह मन्त्र काटत द्वन्द्व है॥

(२६३)

'मैं देह हूँ' इस ज्ञानसे उत्पन्न होता मोह है।
होता किसीसे राग है, होता किसीसे द्रोह है॥
होता इसीसे पाप है, होता इसीसे पुण्य है।
'मैं ब्रह्म हूँ', 'मैं ब्रह्म हूँ' यह जाप ही जगमान्य है॥

(२६४)

'मैं देह हूँ' इस ज्ञानसे, नर होय मदसे चूर है।
करुणा दयाको छोड़कर, हो जाय कामी क्रूर है॥
अवगुण बनाता मित्र, रहता शुभ गुणोंसे दूर है।
'मैं ब्रह्म हूँ', 'मैं ब्रह्म हूँ' मदको करे कर्पूर है॥

(२६५)

'मैं देह हूँ' इस ज्ञानसे उत्पन्न मत्सर होय है।
वश होय जिसके मूढ़ परकी सम्पदा लख रोय है॥
बेअर्थ करता वैर है, बेअर्थ ही होता दुखी।
'मैं ब्रह्म हूँ', 'मैं ब्रह्म हूँ' यह मन्त्र करता है सुखी॥

(२६६)

'मैं देह हूँ' इस ज्ञानसे उत्पन्न चिन्ता होय है।
जलता रहे है मूढ़ क्षण नहिं नींद सुखकी सोय है॥
चिन्ता-भुजंगिन नहिं डसा, नहिं जीव ऐसा कोय है।
'मैं ब्रह्म हूँ', 'मैं ब्रह्म हूँ' यह मन्त्र चिन्ता खोय है॥

(२६७)

'मैं देह हूँ' इस ज्ञानसे, ईर्षा बढ़े है रात दिन।
ज्यों खाज करती है दुखी, नहिं चैन देती एक क्षण॥
दीखे कभी लुक जाय है, टलती नहीं है यह बला।
'मैं ब्रह्म हूँ', 'मैं ब्रह्म हूँ' जपना यही सबसे भला॥

(२६८)

मुझमें न तीनों देह हैं, तीनों अवस्थायें नहीं।
मुझमें नहीं बालकपना, यौवन बुढ़ापा है नहीं॥
जन्मूँ नहीं मरता नहीं, होता नहीं मैं वेश-कम।
'मैं ब्रह्म हूँ', 'मैं ब्रह्म हूँ' तिहुँ कालमें हूँ एक सम॥

(२६९)

अभ्यास करता कानसे, तब शब्द सुनने मैं लगूँ।
रोता भयानक शब्द सुन, रोचक सुनूँ हँसने लगूँ॥
मेरा नहीं है कान, मैं सुनता न कोई घोष हूँ।
'मैं ब्रह्म हूँ' 'मैं ब्रह्म हूँ,' मैं पूर्ण हूँ, मैं ठोस हूँ॥

(२७०)

जब मेल करता आँखसे, तब रूप नाना भासते।
सुन्दर असुन्दर रूप दोनों, मोहमें हैं फाँसते॥
जब मूँद लेता आँख तो, कुछ भी नहीं है भासता।
'मैं ब्रह्म हूँ', मैं ब्रह्म हूँ, नहि आँखसे कुछ वासता॥

(२७१)

करता त्वचासे संग जब, शीतोष्ण करता हूँ ग्रहण।
अनुकूल पाकर हर्षता, प्रतिकूल लख करता रुदन॥
जब है त्वचा सोजावती, नहिं भासता कोमल कठिन।
'मैं ब्रह्म हूँ', 'मैं ब्रह्म हूँ,' यह ही भला करना मनन॥

(२७२)

सम्बन्ध होता जीभसे तब स्वादमें लग जावता।
कड़वा कसैला नहिं रुचे, मीठा सलोना भावता॥
जिह्वा जली बहु योनियोंमें जन्म दे कीन्हा दुखी।
'मैं ब्रह्म हूँ', 'मैं ब्रह्म हूँ' जप कर हुआ हूँ मैं सुखी॥

(२७३)

इस नाकसे सम्बन्ध करके दम हुआ था नाकमें।
वर्षो तलक फिरता रहा, स्रक् चन्दनादिक-ताकमें॥
पावन परम गन्दा हुआ, मैं राग करके गन्धमें।
'मैं ब्रह्म हूँ', जबसे जपा, तबसे हुआ निर्द्वन्द्व मैं॥

(२७४)

मनने बनाया विश्व यह, मन ही रचा यह देह है।
मनमात्र कारण दुःखका, इसमें नहीं सन्देह है॥
मन है बना संकल्पका, संकल्प क्या है ? कल्पना।
'मैं ब्रह्म, हूँ' 'मैं ब्रह्म हूँ,' संकल्प मुझमें अल्प ना॥

(२७५)

मनका रचा आकाश, वायू, तेज, जल अरु भूमि है।
मन चित्त, मन अन्तःकरण, मन ही कहाता बुद्धि है॥
मन ही कहाता जीव है, मन ही कहाता बन्ध है।
'मैं ब्रह्म हूँ', 'मैं ब्रह्म हूँ,' मनसे न मम सम्बन्ध है॥

(२७६)

जो एक वस्तू होय है, सो हो सके नाना नहीं।
जब एक केवल ब्रह्म है, तो भेद फिर कैसा कहीं ॥
देखन-सुननमें आय जो, नहिं ब्रह्मसे सो अन्य है।
'मैं ब्रह्म हूँ', 'मैं ब्रह्म हूँ,' वह ब्रह्म एक अनन्य है॥

(२७७)

आनन्द हूँ, परिपूर्ण हूँ, चैतन्य अक्षय बोध हूँ।
परसे परे अद्वैत हूँ, निर्दोष हूँ बिनु क्रोध हूँ॥
संसारके सुख दुःख मुझ निःसंगको छूते नहीं।
'मैं ब्रह्म हूँ,' 'मैं ब्रह्म हूँ,' इसमें जरा संशय नहीं॥

(२७८)

जब दुःख मुझमें है नहीं, सुखरूप ही मैं शेष हूँ।
चिद्रूप हूँ प्रतिभानयुत, नहिं न्यून, नाहिं विशेष हूँ॥
आता नहीं, जाता नहीं, मरता नहीं, नहिं जन्मता।
'मैं ब्रह्म हूँ,' 'मैं ब्रह्म हूँ,' 'मैं सत्यता,' 'मैं नित्यता॥'

(२७९)

ब्रह्मात्मके एकत्वमें, जब बुद्धि लय हो जाय है।
ज्यों नौन-डेली सिन्धुमें, त्यों ही वहाँ खो जाय है॥
रहता वहाँ कुछ भी नहीं, बस ब्रह्म रहता शेष है।
सो ब्रह्म मैं, मैं ब्रह्म सो, इसमें न संशय लेश है॥

(२८०)

जब बुद्धि लय हो जाय है, चेष्टा न कोई होय है।
क्या बाहरी, क्या भीतरी, होती क्रिया नहिं कोय है॥
जैसा वहाँ आनन्द है, अनुमान हो सक्ता नहीं।
मैं ब्रह्म हूँ, मैं ब्रह्म हूँ, इसमें जरा धोखा नहीं॥

(२८१)

आत्मा-सुधा भरपूर सागर है हिलोरें ले रहा।
नहिं जान सक्ता मन उसे, नहिं जाय वाणीसे कहा॥
ओला यथा गिर सिन्धुमें, जिस ब्रह्ममें मन होय लय।
सो ब्रह्म मैं हूँ, एक रस, सच्चित् तथा आनन्दमय॥

(२८२)

जब बुद्धि लय हो ब्रह्ममें तब विश्व यह भग जाय है।
चलता पता उसका नहीं किस कोणमें घुस जाय है॥
हो जाय है जिस ब्रह्ममें, यह विश्व सारा लापता।
सो ब्रह्म मैं अद्वैत हूँ, मुझमें नहीं है द्वैतता॥

(२८३)

क्या ग्राह्य है, क्या त्याज्य है, यह कल्पना नहिं ब्रह्ममें।
अनुकूल या प्रतिकूल भी, नहिं कल्पना कुछ ब्रह्ममें॥
सीमारहित सागर सुधाका ब्रह्म ही परिपूर्ण है।
सो ब्रह्म ही मैं आप हूँ, मेरे सिवा नहिं अन्य है॥

(२८४)

गुरु वाह वा ! श्रुति वाह वा, भव-सिन्धुसे काढ़ा मुझे ।
मम नावके मल्लाह बन, संसारसे तारा मुझे ॥
मैं जानता था देह हूँ, थी भूल, मैं वेअंग हूँ ।
वेलिंग हूँ, निर्दोष हूँ, कूटस्थ हूँ, निःसंग हूँ ॥

(२८५)

रागादि मुझमें हैं नहीं, शाश्वत अविद्यामुक्त हूँ ।
हूँ कार्य-कारणसे रहित, अक्षय निरामय तत्त्व हूँ ॥
कर्ता नहीं, भोक्ता नहीं, हूँ निर्विकारी अक्रियः ।
शुचि शुद्ध बोधस्वरूप हूँ, केवल सदा शिव अव्ययः ॥

(२८६)

निःसंग हूँ, परिपूर्ण हूँ, बोधात्म हूँ निर्द्वन्द्व हूँ ।
माया अविद्यासे परे स्वच्छन्द परमानन्द हूँ ॥
यह भी नहीं, वह भी नहीं, नहिं पास हूँ, नहिं दूर हूँ ।
बाहर नहीं, भीतर नहीं, सर्वत्र ही भरपूर हूँ ॥

(२८७)

उपमारहित हूँ मैं सनातन, कल्पनासे हूँ परे ।
निर्भेद हूँ मैं एक रस, आद्यन्तसे मैं हूँ परे ॥
निर्मोह हूँ, निःशोक हूँ, निर्द्वन्द्व चिन्तासे परे ।
तीनों गुणोंसे हूँ रहित, निर्विघ्न मायासे परे ॥

(२८८)

नरकान्त नारायण महत् त्रिपुरान्त अच्युत एक हूँ।
सर्वेश साक्षी पुरुष मैं ही एक और अनेक हूँ॥
ममता अहंतासे रहित, निर्लेप ईश्वरशून्य हूँ।
निःसंग द्रष्टा सर्वका हूँ शुद्ध सबसे भिन्न हूँ॥

(२८९)

मैं सर्व भूतोंमें टिका, भूतों सभीसे मैं जुदा।
ज्ञानात्म अन्तर बाह्य हूँ, मैं बाह्य भीतरसे जुदा॥
भोक्ता तथा हूँ, भोग्य मैं ही भोग्य भोक्तासे पृथक्।
पहिले पृथक् था दीखता, सो अब नहीं कुछ है पृथक्॥

(२९०)

बेतोड़ मुझ सुख सिन्धुमें ये विश्व। लहरें अनगिनत।
माया मरुतके वेगसे, उत्पन्न लय होती रहत॥
है काल जैसे एक उसमें जोड़ है नहिं तोड़ है।
अज्ञानियोंकी कल्पनाओंमें हजारों क्रोड़ है॥

(२९१)

त्यों एक मुझ बेतोड़में, रंचक नहीं कुछ भेद है।
अज्ञानियोंने कल्प लीं, लाखों उपाधी, खेद है!॥
आरोपके अध्याससे, आश्रय न दूषित होय है।
अविवेकियोंकी दृष्टिसे नहिं हानि मेरी कोय है॥

(२९२)

ज्यों सूर्य ऊसरको कभी, मरु-जल न गीला कर सके।
त्यों ठोस सूना तत्त्व मुझमें विश्व कुछ ना कर सके॥
आकाश सम निर्लेप मैं, नहिं धूलसे संयुक्त हूँ।
आदित्य सम निःसंग मैं, घर्मादिसे नहिं लिप्त हूँ॥

(२९३)

विन्ध्यादि सम मैं हूँ अचल, तृणादिसे नहिं हिल सकूँ।
ज्यों सिन्धु हूँ गम्भीर मैं मर्यादसे नहिं टल सकूँ॥
सम्बन्ध जैसे बादलोंसे पक्षियोंका है नहीं।
सम्बन्ध मेरा देहसे इस भाँति होता है नहीं॥

(२९४)

सम्बन्ध नहिं जब देहसे तो जागना मुझमें कहाँ?
हो स्वप्न फिर कैसे भला सोना तथा मुझमें कहाँ?
आती उपाधीमात्र है, जाती उपाधी है सदा।
करती उपाधी कर्म है, भागे उपाधी सर्वदा॥

(२९५)

होती उपाधी बाल है, होती उपाधी प्रौढ़ है।
होती उपाधी है चतुर, होती उपाधी मूढ है॥
होती उपाधी वृद्ध है, मर भी उपाधी जाय है।
जलती उपाधी आगमें, फिर जन्म दूजा पाय है॥

(२६६)

मैं हूँ कुलाचल सम अचल, हिलता न डुलता मैं कभी।
हूँ ठोस भूमा लोह सम, पोला न होता मैं कभी॥
सब कालमें हूँ एक रस, मुझमें न लेश प्रवृत्ति है।
अवयवरहित मुझ माँहि ऐसे ही बने न निवृत्ति है॥

(२६७)

आकाश सम परिपूर्ण हूँ, अद्वैत हूँ, निर्भेद हूँ।
चेष्टा न मुझमें हो सके, कूटस्थ हूँ, निर्वेद हूँ॥
मन बुद्धि मुझमें है नहीं, मुझमें नहीं ज्ञानेन्द्रियाँ।
प्राणादि भी मुझमें नहीं, 'मुझमें नहीं कर्मेन्द्रियाँ॥

(२६८)

श्रुति युक्तिसे यह सिद्ध है, फिर कर्म मैं कैसे करूँ?
जब कर्म मैं करता नहीं, तो बिन किये कैसे भरूँ?
ज्यों देहका होता नहीं सम्बन्ध छायासे कभी।
सम्बन्ध त्यों ही आत्मका नहिं देहसे होवे कभी॥

(२६९)

शीतोष्ण मैला स्वच्छ या, छाया भले छूआ करे।
नहिं पुरुषकी कुछ हानि है, है पुरुष छायासे परे॥
त्यों कर्म अच्छे या बुरे, काया भले करती रहे।
निःसंग आत्माका न उससे लाभ है, नहिं हानि है॥

(३००)

ज्यों मैल आदिक धर्म घरके दीपमें लगते नहीं।
अन्तःकरणके धर्म त्यों मुझ आत्ममें घुसते नहीं॥
ज्यों कर्म सबके देखता रवि संग उनसे नहिं करे।
सज्जन दुरात्माके यहाँ ज्यों अग्नि इकसा ही जरे॥

(३०१)

ज्यों रज्जु कल्पित सर्पसे करती नहीं सम्बन्ध है।
कूटस्थ मुझ चैतन्यमें, इस भाँति ही नहिं बन्ध है॥
करता नहीं मैं कुछ कभी, कुछ हूँ कराता भी नहीं।
भोक्ता नहीं मैं आप, दूजेको भुगाता भी नहीं॥

(३०२)

मैं देखता भी हूँ नहीं, अरु मैं दिखाता हूँ नहीं।
मैं सिद्ध चेतन हूँ स्वयं, हिलता हिलाता हूँ नहीं॥
प्रतिबिम्ब हिलता देख जलमें सूर्य हिलता जानते।
ज्यों मूढ़ त्यों ही आपमें दुख अन्यका हैं मानते॥

(३०३)

जड़ देह लोटे धूलमें, जलमें भले ही यह गले।
मैं देहसे मिलता नहीं, ज्यों नभ नहीं घटसे मिले॥
कर्तापना भोक्तापना, उन्मत्तता अरु मूर्खता।
जड़ता तथा चैतन्यता, सम्बद्धता, निर्मुक्तता॥

(३०४)

ये धर्म सब कल्पे हुए हैं बुद्धिके मेरे नहीं।
कैसे मुझे फिर प्राप्त हों, जब भ्रान्ति मुझमें है नहीं॥
माया प्रकृतिके रूप लाखों या करोड़ों हों भले।
निर्लेप मुझ चैतन्यका, नहिं रोम भी उनसे हिले॥

(३०५)

अव्यक्तसे ले स्थूलतक, यह विश्व जिसमें भासता।
अद्वैत सो ही ब्रह्म मैं तिहुँ काल माँहि प्रकाशता॥
मैं हूँ प्रकाशक सर्वका, मैं सर्वका आधार हूँ।
सबसे रहित मैं सर्वगत, चिन्मात्र सर्वाकार हूँ॥

(३०६)

मैं नित्य निश्चल शुद्ध हूँ, सारे विकारोंसे रहित।
अद्वैत है जो तत्त्व मैं भी हूँ वही संशयरहित॥
माया न मुझमें लेश है, मुझमें न माया कार्य है।
भीतर सभीके मैं रहूँ, नहिं वृत्ति मुझतक जाय है॥

(३०७)

मैं सर्व हूँ, सर्वात्म हूँ, सबसे परे निर्वेध हूँ।
केवल अखण्डित बोध हूँ, दुर्भेद्य हूँ, दुश्छेद्य हूँ॥
निष्क्रिय तथा मैं निर्विकारी हूँ निराकारी अकल।
अद्वय विकल्पोंसे रहित, आलम्ब बिनु अक्षय अचल॥

(३०८)

चिन्मात्र केवल बोध हूँ, मैं शान्त शाश्वत मुक्त हूँ।
मैं शुद्ध हूँ, मैं बुद्ध हूँ, सन्मय निरामय तृप्त हूँ॥
'मैं' छोड़, मैं हूँ सर्व, सबसे हीन केवल बोध हूँ।
सबसे विलक्षण सर्वपर हूँ मोदका भी मोद हूँ॥

(३०९)

आकार मेरा है नहीं तो भी बना साकार हूँ।
आधार मेरा है नहीं, मैं सर्वका आधार हूँ॥
आधार अरु आधेयकी है मात्र मुझमें कल्पना।
मैं ब्रह्म सर्वाधार हूँ, यह भी कथन मुझ माँहि ना॥

(३१०)

होवे जहाँ है एक दोकी हो वहाँपर धारणा।
जब दो नहीं तो एक भी बनती नहीं निर्धारणा॥
अद्वैत नहिं, नहिं द्वैत, द्वैताद्वैत दोनों कल्पना।
मैं एक हूँ, इस कथनकी मुझमें नहीं सम्भावना॥

(३११)

होता जहाँपर है असत्, सत् भी वहाँपर मान्य है।
कुछ भी असत् जब है नहीं, सत् भी कहाँ फिर अन्य है॥
मैं सत् असत्से हूँ परे, सत् औ असत् दिखलावता।
मैं सत्य हूँ, यह वचन भी, मुझमें नहीं बन आवता॥

(३१२)

होता अचेतन है जहाँ, जड़ भी वहाँ कहलाय है।
होवे जहाँ जड़ ही नहीं, चेतन कहा नहिं जाय है॥
चेतन अचेतनसे परे दोऊनका आधार हूँ।
सब कल्पनाओंसे रहित मैं सारका भी सार हूँ॥

(३१३)

होता जहाँपर अन्य है, आत्मा वहीं ही होय है।
जब अन्य कुछ है ही नहीं, आत्मा नहीं फिर कोय है॥
आत्मा अनात्मासे परे मैं आत्म केवल आत्म हूँ।
है नाम कुछ मेरा नहीं, बे-रूप हूँ बे-नाम हूँ॥

(३१४)

कर्तव्य था सो कर लिया, करना मुझे नहिं शेष है।
करने न करनेसे नहीं, फिर भी मुझे कुछ द्वेष है॥
करने न करनेसे मुझे यद्यपि न कोई है गरज।
शिष्टाचरण पालन करूँ तो भी नहीं मेरा हरज॥

(३१५)

पूजा करूँ यदि देवकी, मेरा नहीं कुछ छीजता।
गंगा करूं मैं स्नान तो, मेरा नहीं कुछ भीजता॥
तारक जपे जिह्वा भले, मेरा नहीं कुछ जाय है।
पढ़ती रहे या उपनिषद् मुझमें नहीं कुछ आय है॥

(३१६)

यदि बुद्धि ध्यावे विष्णुको, मेरा न कुछ जाता चला।
यदि लीन होवे ब्रह्ममें, उत्तम महा सबसे भला॥
करने न करनेसे मुझे लगती न दुनियाकी हवा।
करता रहूँ तो वाह वा! बैठा रहूँ तो वाह वा!

(३१७)

गुरु शास्त्र ईश्वर-कृपासे स्वाराज्य मैंने पा लिया।
सब कार्य पूरे हो गये, मैं आज गंगा न्हा लिया॥
योगांग आठों कर लिये, मैं हो गया कृतकृत्य हूँ।
ओ हो! अहाहा! तृप्त हूँ, संतृप्त हूँ!! संतृप्त हूँ!!!

(३१८)

पूरा विवेकी हो गया, अविवेककी दुम झड़ गई।
पूरा हुआ वैराग्य मैया रागकी भी मर गई॥
पूरे हुए शम आदि इच्छा मुक्तिकीसे मुक्त हूँ।
ओ हो! अहाहा! तृप्त हूँ! संतृप्त हूँ!! संतृप्त हूँ!!!

(३१९)

पूरा श्रवण, पूरा मनन, पूरा निदिध्यासन हुआ।
तत्त्वं पदारथ शोध लीन्हा, नित्य नारायण हुआ॥
प्राप्तव्य कीन्हा प्राप्त मैं कृतकृत्य हूँ कृतकृत्य हूँ।
ओ हो! अहाहा! तृप्त हूँ! संतृप्त हूँ!! संतृप्त हूँ!!!

(३२०)

यों तृप्त हो मनमें मुमुक्षू, मुक्त संशय, मुक्त भय।
जगमें विचरने लग गया, सब प्राणियोंको दी अभय॥
अशरीर भी सशरीर सम, व्यवहार करने लग गया।
प्रारब्ध जब क्षय हो गया, तब लीन भूमामें भया॥

(३२१)

श्रुति टेर सुन दे ध्यान भोला! होशमें आ, चेत जा।
बचपन गया, यौवन चला, आया बुढ़ापा चेत जा॥
है आ रहा यमका बुलावे पै बुलावा चेत जा।
क्या ठीक है दम जायके आया न आया चेत जा!

(३२२)

जो केश काले भ्रमर थे, गाले रुईके बन गये।
थे दाँत हाथी दाँत सम मजबूत गिरने लग गये॥
आँखें चुरा आँखें गईं हैं, दृष्टि मन्दी पड़ गयी।
मुख हो गया है पोपला, तृष्णा अधिक है बढ़ गयी॥

(३२३)

नहिं कान देते काम अब ऊँचा बहुत सुनने लगे।
पग डगमगाते चालते, हैं हाथ भी हिलने लगे॥
काया गली झुर्री पड़ीं, हड्डी हुई हैं खोखली।
ज्यों जोंक चिन्ता सर्पिणीने, रक्त चर्बी सोख ली॥

(३२४)

सब इन्द्रियाँ बलहीन हैं, धनु सम कमर है झुक गई।
काया हुई बूढ़ी मगर आशा नहीं बूढ़ी हुई॥
यमदूत तुझको दे रहे हैं, कूचकी यह सूचना।
आश्चर्य है! आश्चर्य है, होता तुझे है चेत ना॥

(३२५)

बहु कालतक सोया किया, अब मोह-निद्रा त्याग रे।
सब कामनाएं त्याग कर, ईश्वर भजनमें लाग रे॥
संसार जलती आग है, इस आगसे बच भाग रे।
सबका भरोसा छोड़ दे, कर ईशमें अनुराग रे॥

(३२६)

हैं भोग सब घर रोगके, मत भोगमें आसक्त हो।
चिन्ता करे मत अन्यकी, विश्वेशमें अनुरक्त हो॥
संसारमें सुख है नहीं, जगदीश भज कर हो सुखी।
संसारकी आशा करें, वे मूढ होते हैं दुखी॥

(३२७)

विश्वेश ही सुखरूप है, नहिं अन्यमें है सुख कहीं।
सुख-सिन्धु तेरे पास ही है, क्यों उसे भजता नहीं॥
बाहर मती अब देख, कर ले दृष्टि तू अन्तर्मुखी।
बाहर रहेगा देखता, तबतक नहीं होगा सुखी॥

(३२८)

नाता जगत्से तोड़ दे, आशा सभीकी छोड़ दे।
सब इन्द्रियाँ एकत्र कर, मन वृत्ति शिवमें जोड़ दे॥
एकत्व सबमें देख रे, भाँडा दुईका फोड़ दे।
'मैं' त्याग, 'मेरा' त्याग दे, फिर त्यागको भी तोड़ दे॥

(३२९)

पीड़ा किसीको दे नहीं, चर-अचर सबको दे अभय।
देता अभय जो सर्वको, सो ही यती पाता विजय॥
जो भय दिखाता अन्यको, भय-मुक्त सो होता नहीं।
देता सभीको जो अभय, सो भय नहीं पाता कहीं॥

(३३०)

शिव न्यास कर दे सर्व, संन्यासी वही कहलाय है।
योगी वही, ज्ञानी वही, त्यागी वही कहलाय है॥
जो त्याग कर दे सर्वका, सो विष्णु पदवी पाय है।
स्वाराज्य निष्कण्टक लहे, संसारमें नहिं आय है॥

(३३१)

होता जहाँपे स्नेह है, भय भी वहाँपर होय है।
जो स्नेह नाहीं त्यागता, नहिं शान्तिसे सो सोय है॥
है स्नेह नाशक योगका, इसमें नहीं सन्देह है।
जो स्नेह लेता जीत, पाता विष्णु निःसन्देह है॥

(३३२)

बेड़ी कड़ी है संग यह ही, पण्डितोंको बाँधती।
संसारमें देती पटक है गर्भ माँही राँधती॥
विष है मुमुक्षूके लिये, यह संग बेड़ी तोड़ दे।
निःसंग होकर विचर जगमें, संग भयप्रद छोड़ दे॥

(३३३)

दे त्याग विष सम विषय अब, दे त्याग माया जाल सब।
कर प्राप्त चक्षु ज्ञानके, इकला विचर, हो शान्त अब॥
शिव एकका ही ध्यान कर, दूजा न कोई साथ रख।
दो हों जहाँ होवे वहाँ ही संग निश्चय याद रख॥

(३३४)

है शब्द माँही अर्थ जैसे गुप्त रहता सर्वदा।
निःसंगतामें ध्यान त्यों ही ब्रह्मका रहता सदा॥
जिस ध्येयका नहिं ध्यान होवे पूर्ण निश्चलता बिना।
सो ध्येय कैसे प्राप्त हो, यदि संगका हो त्याग ना॥

(३३५)

दे त्याग सबका संग रे, कर त्याग निज अभिमान दे।
सन्ताचरण परिपाल रे, सच्छास्त्रको सन्मान दे॥
तज काम दे, तज क्रोध दे, जा लोभके तू पास ना।
विश्वेशका नित ध्यान धर, कर रे जगत्‌की आश ना॥

(३३६)

आसक्ति तनमें रख नहीं, मनमें न कोई वासना ।
मत भय किसीसे खा कभी, दे तू किसीको त्रास ना ॥
कड़वी न वाणी बोल रे, वाणी मधुर उच्चार रे ।
कम बोल रे, हित बोल रे, परिपाल शिष्टाचार रे ॥

(३३७)

रह दूर परधनसे सदा, मत पासतक भी जा कभी ।
मत आँखसे भी देख रे, मत ध्यानमें भी ला कभी ॥
मत संग नारीका करे, मत ध्यान नारीका करे ।
जो ध्यान नारीका धरे, भवसिन्धुसे नहिं सो तरे ॥

(३३८)

हैं नारि जितनी विश्वमें, जगदम्बिका सब जान रे ।
लक्ष्मी भवानी शारदा, श्रुति, भगवती सम मान रे ॥
ज्यों इष्ट देवी पूज रे, मत गर्भमें फिर आ कभी ।
है काम ही भव-मूल यह, श्रुति सन्त कहते हैं सभी ॥

(३३९)

आदर निरादर एक गिन, मत चाह तू सन्मान रे ।
जो आपसे भी देय कोई, ले न तू वह दान रे ॥
जितना रखेगा पास उतना ही बढ़ेगा सोच भी ।
होगा नहीं जब पास कुछ भी तो न होगा सोच भी ॥

(३४०)

सन्तुष्ट रह तू सर्वदा, सन्तोष ही है मुख्य धन।
सन्तोषवाला ही सुखी है, हो भले ही नग्न तन॥
ऐश्वर्य तीनों लोकका सन्तोषके सम है नहीं।
सन्तोष जिसके पास है, उस सम धनी जगमें नहीं॥

(३४१)

होवे भले ही तन मलिन, मत कर कभी मनको मलिन।
जिनका रहे हैं मन मलिन, सुख प्राप्ति उनको है कठिन॥
ऊँची क्रिया कर भावना, फिर मलिन मन नहिं होयगा।
ज्यों ज्यों करे शुभ भावना, मन शुद्ध त्यों त्यों होयगा॥

(३४२)

मत कर किसीसे राग रे, मत कर किसीसे द्वेष रे।
सन्मान या अपमानमें मत हर्ष पा मत क्लेश रे॥
क्या शत्रु हो क्या मित्र दोनों एकसे ही मान रे।
विश्वेशके सब रूप हैं, दे सर्वको सन्मान रे॥

(३४३)

संसार प्रभुकी वाटिका है, देख उसकी सैर रे।
कर प्यार सबको एक-सा, मत कर किसीसे वैर रे॥
कर मात्र जगकी सैर मत तू बोझ शिरपर लाद रे।
है ईश रक्षक सर्वका, उसको सदा रख याद रे॥

(३४४)

प्रारब्धकी ले झोलियाँ, सब लोग जगमें आयँ हैं।
जो झोलियोंमें है भरा, सो ही निकाले खायँ हैं॥
ईर्षा करे क्यों औरसे, मनको जलाता किस लिये ?
मिल जाय उससे कर गुजर, परको सताता किस लिये ?

(३४५)

यदि शान्ति तुझको इष्ट है, धर ईशका तू ध्यान रे।
दे सौंप उसको इन्द्रियाँ, दे अर्प उसको प्राण रे॥
संसारसे मुख मोड़ ले, मन-वृत्ति शिवमें जोड़ रे।
सुख-सिन्धु ईश्वर पास है, मत दूर जगमें दौड़ रे॥

(३४६)

जप नाम शिव सुखधामका, कर गान मंगलकारका।
धर ध्यान शाश्वत नित्यका, कर ज्ञान हरि सुखसारका॥
बाहर भटक मत, शिर पटक मत मानियोंके द्वारपर।
विश्वेशको शिर दे झुका, पड़ जा उसीके द्वारपर॥

(३४७)

शिवका भरोसा, आश शिवकी, भक्त शिवका हो सदा।
मत दास हो तू आशका, भज रे निराशा सर्वदा॥
आशा बुरी तृष्णा बुरी, मतिको करे ये भ्रष्ट हैं।
इन दोषसे जो मुक्त हैं, वे शिष्ट नर ही श्रेष्ठ हैं॥

(३४८)

हैं भक्त हरिके विमल मन, उनका किया कर आचरण।
गा गीत उनके ही सदा, ले पकड़ उनके ही चरण॥
कर तू उन्हींका संग रे, रँग जा उन्हींके रंग रे।
कर गान उनके गुणनका, कर दोष मनके भंग रे॥

(३४६)

जिनको नहीं मन-कामना, जो लोग चाहते नाम ना।
सुखकी जिन्हें इच्छा नहीं, दुखसे जिन्हें कुछ काम ना॥
सब इन्द्रियाँ स्वाधीन हैं, मन हो गया जिनका अमन।
उन भक्त जीवन्मुक्तको भोला! नमन कर, फिर नमन॥

(३५०)

अपना नहीं जो जानते, पर भी नहीं जो मानते।
कोई शत्रु हो, या मित्र दोनों एक सम ही जानते॥
करते सभीको प्यार, जिनका स्वच्छ है अन्तःकरण।
उन भक्त जीवन्मुक्तको भोला! नमन कर, फिर नमन॥

(३५१)

अपना नहीं कुछ मानते, ममता नहीं है गेहमें।
विश्वेशमें अनुरक्त हैं, नहिं है अहंता देहमें॥
निर्मुक्त मायासे हुए, मायेशकी ली है शरण।
उन भक्त जीवन्मुक्तको भोला! नमन कर, फिर नमन॥

(३५२)

संसार स्वप्न मानते, जगदीश सच्चा जानते।
ब्राह्मण, गौ, चण्डाल, हाथी, श्वान, खर सम मानते॥
रोचक, भयानक देखकर होते नहीं उद्विग्न-मन।
उन भक्त जीवन्मुक्तको भोला! नमन कर, फिर नमन॥

(३५३)

शुष्कान्नसे नहिं है घृणा, मिष्ठान्नकी नहिं चाह है।
नहिं शोक करते हानिमें, नहिं लाभकी परवाह है॥
चिन्ता कभी करते नहीं, करते सदा हरि-चिन्तवन।
उन भक्त जीवन्मुक्तको भोला! नमन कर, फिर नमन॥

(३५४)

नहिं मृत्युसे घबरायँ, जीवनमें नहीं सुख मानते।
शिव सर्व है सर्वत्र है, इसके सिवा नहिं जानते॥
क़रना न कुछ है त्याग, जिनको कुछ नहीं करना ग्रहण।
उन भक्त जीवन्मुक्तको भोला! नमन कर, फिर नमन॥

(३५५)

चिन्मात्र देखें विश्वको, किञ्चित नहीं जड़ जानते।
माया नहीं, काया नहीं, हैं उभय मिथ्या मानते॥
रहते सदा ही शान्त मन, आनन्द, आत्मामें मगन।
उन भक्त जीवन्मुक्तको भोला! नमन कर फिर नमन॥

(३५६)

स्वच्छन्द हैं, निर्द्वन्द्व हैं, तीनों गुणोंसे जो परे।
है बोध स्वाभाविक जिन्हें क्षण एक भी वे नहिं टरे॥
जो दर्शसे तिहुँ लोकको पावन करें तारण-तरण।
उन भक्त जीवन्मुक्तको भोला! नमन कर, फिर नमन॥

(३५७)

किञ्चित् नहीं 'मैं' पन जिन्हें, चिन्मात्र हैं, सर्वत्र हैं।
चिद्रूप हैं, परिपूर्ण हैं, सन्मात्र हैं, सुखमात्र हैं॥
नहिं भाव निर्गुण है जिन्हें, नहिं भाव जिनको है सगुण।
उन भक्त जीवन्मुक्तको भोला! नमन कर, फिर नमन॥

(३५८)

पावन परम, अक्षर परम, सच्चित् परम आनन्दघन।
ब्रह्मात्म अक्षय एक रस, अच्युत निरामय हीन तन॥
परिपूर्ण साक्षी वृत्तियोंका, हीन इन्द्रिय हीन मन।
परसे परे गुरुदेवको भोला! नमन कर, फिर नमन॥

इति सर्वमंगलमस्तु!